Company Law and Auditing
BC - 203

Maximum Marks : 80
Internal Assessment : 20
Time : 3 Hours

Note : Ten questions shall be set in the question paper with at least three questions from each unit. The candidates shall be required to attempt five questions in all, selecting at least one question but not more than two from each unit.

Unit - I Introduction : Meaning, characteristics & Types of Companies; Promotion and incorporation of companies; Memorandum of association, Articles of Association, Prospectus; Share Capital, Membership, Borrowing powers, mortgages and charges.

Unit - II Introduction : Meaning and Objectives of auditing; Types of audit; Internal audit.

Audit process: audit programme; working papers and evidences; Routine checking and test checking.

Internal Check System

Vouching; Verification of assests and liabilities.

Unit - III Audit of Limited companies- Company auditor-appointment, powers, duties and liabilities, auditor report; Investigation meaning, nature and importance.

Directors-Appointment, Powers and legal position.

company meetings-kinds, quorum, voting, resolutions, minutes.

Suggested Readings:

1. Gower, L.C.B. : Principles of Modern Company Law: Stevens & Sons, London.
2. Gupta, Kamal : Contemporary Auditing; Tata Mc Graw Hill, New Delhi.
3. Kuchal, M.C. : Modern India Company Law, Shri Mahavir Books, Noida.
4. Kapoor, N.D. : Company Law- Incorporating the Provision of the Companies Amendment Act, 2000; Sultan Chand & Sons New Delhi.
5. Ramaiya, A. : Guide to the Companies Act; Wadhwa & Co. Nagpur.
6. Singh, Avtar : Company Law : Eastern Book Co., Lucknow.
7. Tandon B.N. : Principles of Auditing; S. Chand and Co., New Delhi.

Directorate of Distance Education
Kurukshetra University
Kurukshtra-136 119

B.Com - II

BC - 203 Company Law & Auditing

No.	Topic	Writer	Page No.
1.	भारत में कंपनी अधिनियम का उद्‌गम तथा इतिहास	Ashu K. Garg	5-10
1.(A)	परिचयः अर्थ, विशेषताएं एवं कम्पनियों के प्रकार; कम्पनियों का निर्माण एवं समामेलन	Pawan Singla	11-32
2.	पार्षद सीमानियम-अर्थ, विषयवस्तु तथा परिवर्तन एवं पार्षद अन्तर्नियम	Dr. Jagdish Gupta	33-52
3.	प्रविवरण	Dr. Jagdish Gupta	53-66
4.	ऋण लेने के अधिकार, बन्धक तथा प्रभार; सभाएँ तथा प्रस्ताव	Dr. Jagdish Gupta	67-86
5.	प्रबन्ध एवँ प्रशासन	Dr. Jagdish Gupta	87-98
6.	अंकेक्षण, अर्थ, महत्व, उद्देश्य एवं वर्गीकरण; आन्तरिक अंकेक्षण एवं आन्तरिक निरीक्षण प्रणाली	Pawan Singla	99-114
7.	अंकेक्षण प्रक्रियाः अंकेक्षण कार्यक्रम; 9999 कार्य-पत्र एवं प्रमाण; नेत्यक जाँच और परीक्षण जाँच	Pawan Singla	115-130
8.	प्रमाणन व दायित्यों का सत्यापन	Dr. Jagdish Gupta	131-150
9.	अंकेक्षक की योग्यताएं, नियुक्ति, अधिकार, कर्त्तव्य और दायित्व	Dr. Jagdish Gupta	151-174
10.	अंकेक्षण रिपोर्ट व अनुसन्धान	Dr. Jagdish Gupta	175-192

B.Com - II

Subject : Company Law & Auditing **Writer : Ashu K. Garg**

Lesson No : 1 **Vetter : Dr. Neelam Dhanda**

भारत में कंपनी अधिनियम का उद्‌गम तथा इतिहास

(Evolution and History of Company Law in India)

अध्याय की रूपरेखा (Structure of the Lesson)

1. परिचय (Introduction)
2. अध्याय के उद्देश्य (Objectives of the Chapter)
3. विषय का प्रस्तुतीकरण (Presentation of the Chapter)
   - 3.1 भारतीय कम्पनी अधिनियम के विकास के विभिन्न चरण
   - 3.2 भारतीय कम्पनी अधिनियम (2013 का 18वाँ)
   - 3.3 कम्पनी अधिनियम के अन्तर्गत प्रशासनिक अधिकारी
4. सारांश (Summary)
5. प्रस्तावित पुस्तकें (Suggested Readings)
6. नमूने के लिये प्रश्न (Sample Question)

1. परिचय (Introduction)

किसी भी व्यवस्था को चलाने के लिये नियमों का होना बहुत आवश्यक है। नियम, अनुभव के आधार पर विषय वस्तु का विश्लेषण करके एवं वर्तमान परिस्थितियों को ध्यान में रखकर बनाए जाते हैं। जब किसी वस्तु से सम्बन्धित नियमों को सामूहिक रूप में प्रस्तुत किया जाता है तो यह उसका अधिनियम माना जाता है। जिस प्रकार संविधान प्रजातन्त्रात्मक सरकार चलाने में अहम भूमिका निभाता है, ठीक उसी प्रकार कम्पनी अधिनियम व्यापार, कम्पनियों तथा ऐसोसिएशन के कार्य निर्वाह के लिए प्रावधानों को परिभाषित करते हैं, जिसके द्वारा कम्पनियों और ऐसोसिऐशनों का प्रबन्ध व संचालन किया जाता है। कानून की किसी भी शाखा के अध्ययन के लिये इसकी बनावट, इतिहास एवं विकास का ज्ञान होना आवश्यक है। भारतीय कम्पनी अधिनियम के इतिहास एवं विकास का मूल स्रोत अंग्रेजी कम्पनी अधिनियम है।

2. अध्याय के उद्देश्य (Objectives of the Chapter)

इस अध्याय में हम भारत में कम्पनी अधिनियम के शासकीय प्रबन्ध तथा इतिहास के बारे में अध्ययन करेंगे। जिससे हमें विभिन्न कम्पनी अधिनियमों तथा उनमें प्रस्तुत प्रावधानों तथा उनकी विशेषताओं की जानकारी प्राप्त होगी।

3. विषय का प्रस्तुतीकरण (Presentation of Contents)

3.1 भारतीय कम्पनी अधिनियम के विकास के विभिन्न चरण

भारतीय कम्पनी अधिनियम पूर्ण रूप से ब्रिटिश कम्पनी अधिनियम पर आधारित है। सर्वप्रथम इंग्लैण्ड में कम्पनी से सम्बन्धित अधिनियम संयुक्त सम्बन्ध कम्पनी अधिनियम, 1844 पारित हुआ। इस अधिनियम ने प्रथम बार बिना राजाज्ञा के, संसद की स्वीकृति के बिना कम्पनी का पंजीकरण करवाने की आज्ञा दी। इस अधिनियम को कम्पनी संगठन का आधार स्तम्भ माना जाता है। भारतीय कम्पनी अधिनियम निम्नलिखित मुख्य चरणों में विकसित हुआ है-

1. **संयुक्त पूंजी कम्पनी अधिनियम, 1850 :** भारत में पहला कम्पनी अधिनियम 1850 में पारित किया गया। इस अधिनियम ने कम्पनी की स्वतन्त्र वैधानिक सत्ता को तो माना परन्तु सीमित दायित्व का अधिकार नहीं दिया। इस अधिनियम के अनुसार देश में 'असीमित दायित्व' वाली कम्पनियों का निर्माण किया जा सकता था। इस अधिनियम ने कम्पनियों को प्रथम बार रजिस्ट्री करवाने की सुविधा प्रदान की। इस अधिनियम के अन्तर्गत कम्पनी के सदस्यों का दायित्व साझेदारी व्यवसाय की भांति असीमित होता था। इसमें अंशधारियों को अंशों के हस्तांतरण की सुविधा भी दी गई।

2. **संयुक्त पूँजी कम्पनी अधिनियम, 1857 :** 1857 के कम्पनी अधिनियम ने कम्पनी संगठन के नये युग का प्रारम्भ किया। इस अधिनियम में प्रथम बार सीमित दायित्व के सिद्धांत को मान्यता दी गई परन्तु बैंक तथा बीमा कम्पनियों को सीमित दायित्व के सिद्धांत के दायरे से बाहर रखा गया। इस अधिनियम के अन्तर्गत यह स्पष्ट किया गया है कि कम्पनियों के अंशधारियों का दायित्व उनके द्वारा कुल किये गये अंशों के मूल्य तक ही सीमित होगा।

3. **संयुक्त पूंजी कम्पनी अधिनियम, 1860 :** कम्पनी अधिनियम में सीमित दायित्व का अधिकार बैंक तथा बीमा कम्पनियों को प्रदान किया गया। यह अधिनियम इंग्लैण्ड के कम्पनी अधिनियम, 1856 पर आधारित था।

4. **संयुक्त पूंजी कम्पनी अधिनियम, 1866 :** इंग्लैण्ड के कम्पनी अधिनियम, 1862 के आधार पर भारतीय कम्पनी अधिनियम, 1866 पारित किया गया। इस अधिनियम के द्वारा व्यापारिक कम्पनियों तथा अन्य संस्थाओं के समामेलन एवं समापन सम्बन्धित प्रावधानों का संशोधन एवं समेकन किया गया।

5. **संयुक्त पूंजी कम्पनी अधिनियम, 1882 :** 1882 में नया भारतीय कम्पनी अधिनियम पास किया गया जिसका मुख्य उद्देश्य इंग्लैण्ड के कम्पनी अधिनियम के संशोधनों को भारतीय कम्पनी अधिनियम में शामिल करना था। यह अधिनियम 1913 तक लागू रहा।

6. **भारतीय कम्पनी अधिनियम, 1913 :** भारत की व्यापारिक एवं आर्थिक दशाओं को ध्यान में रखते हुए 1913 में भारतीय कम्पनी अधिनियम को संशोधित रूप में प्रस्तुत किया गया। यह अधिनियम इंग्लैण्ड के कम्पनी अधिनियम, 1908 पर आधारित था। 1914, 1915, 1920, 1926, 1930 एवं 1932 में इस अधिनियम में सांकेतिक संशोधन किए गए। ब्रिटिश कम्पनी अधिनियम, 1929 के आधार पर 1936 में भारतीय कम्पनी अधिनियम में विस्तृत संशोधन किया गया, तत्पश्चात् 1937 से 1951 तक लगभग प्रतिवर्ष इसमें संशोधन किये जाते रहे, यह अधिनियम भारतीय कम्पनी अधिनियम, 1956 द्वारा निरस्त किया गया।

7. **भारतीय कम्पनी अधिनियम, 1956 :** यह अधिनियम 1 अप्रैल, 1956 को कम्पनी लॉ कमेटी, 1952 के सुझावों के आधार पर लागू किया गया। इस अधिनियम में 658 धाराएं व 13 अनुसूचियां सम्मिलित थीं। यह अधिनियम नागालैण्ड, जम्मू-कश्मीर, गोवा, दमन व दीव के केन्द्र शासित प्रदेश को छोड़कर सम्पूर्ण भारत में लागू होता है।

8. **भारतीय कम्पनी अधिनियम, 2013 :** भारतीय कम्पनी अधिनियम, 1956 को नये कम्पनी अधिनियम, 2013 द्वारा निरस्त किया गया। इस अधिनियम का मुख्य उद्देश्य भारतीय उद्यमियों को अन्तराष्ट्रीय बाजार में स्वतंत्र पहुँच प्रदान करना है। इस कम्पनी अधिनियम में कम्पनी अधिनियम 1956 की 188 धाराओं को हटा दिया गया है।

3.2 भारतीय कम्पनी अधिनियम, 2013 (2013 का 18 वां)

भारतीय कम्पनी बिल 2011 को, जिसे लोक सभा ने 18 दिसम्बर, 2012 को तथा राज्य सभा ने 8 अगस्त, 2013 को पारित किया, अब एक अधिनियम का रूप ले चुका है जिसे (कम्पनी अधिनियम, 2013 के नाम से जाना जाता है। यह अधिनियम 30 अगस्त, 2013 से भारत में लागू हो गया, इस अधिनियम में कुल 470 धाराएं हैं जो 29 शाखाओं तथा अनुसूचियों में बांटी हुई है। इस अधिनियम को संक्षिप्त तथा प्रभावशाली बनाने के लिए इसमें कम्पनी अधिनियम, 1956 की 188 धाराओं को हटा दिया गया है।

कम्पनी अधिनियम, 2013 की मुख्य विशेषताएं/झलकियाँ

कम्पनी अधिनियम, 2013 मुख्य झलकियां निम्नलिखित हैं-

1. इस अधिनियम के अन्तर्गत एक व्यक्ति कम्पनी की धारणा को लागू किया गया है। इसका अर्थ है एक प्राईवेट लिमिटेड कम्पनी जिसमें केवल एक सदस्य हो।

2. अस्पष्टता को दूर करने के लिए इस अधिनियम की धारा 2 के अन्तर्गत 30 से अधिक नई परिभाषाओं को शामिल किया जाता है।

3. इस अधिनियम के अन्तर्गत सभी कम्पनियों के लिए वित्तीय वर्ष 1 अप्रैल से 31 मार्च (कुछ अपवादों को छोड़कर) निर्धारित किया गया है।

4. इस अधिनियम के अन्तर्गत निजी कम्पनी के सदस्यों की अधिकतम संख्या 200 हो सकती है जबकि पिछले कम्पनी अधिनियम में यह संख्या मात्र 50 तक थी।

5. इस अधिनियम के अन्तर्गत पार्षद सीमानियम के उद्देश्य वाक्य का तीन श्रेणियों में विभाजन जैसे मुख्य उद्देश्य, सहायक उद्देश्य व अन्य उद्देश्य को खत्म कर दिया गया है। अब पार्षद सीमानियम के उद्देश्य वाक्य में सिर्फ उन्हीं उद्देश्यों का वर्णन करना अनिवार्य है जिसके लिए कम्पनी की स्थापना की गई है।

6. यदि जनता से विवरण के माध्यम से एकत्रित की गई राशि का प्रयोग उसी उद्देश्य के लिए नहीं हो पाया है जिस उद्देश्य के लिए उसे एकत्रित किया गया था तो बची हुई धनराशि का प्रयोग किसी अन्य उद्देश्य के लिये तभी किया जा सकता है जब इसके लिए विशेष प्रस्ताव पारित किया जाए तथा असहमत अंशधारियों को बाहर जाने को अवसर दिया जाए।

7. नये अधिनियम के अनुसार निजी कम्पनियों द्वारा 'स्थानापन्न' प्रविवरण, को समाप्त करके एक विस्तृत प्रविवरण का निर्गमन अनिवार्य किया गया है, तथा कम्पनियां अंशधारियों की सहमति के बिना प्रविरण की शर्तों में परिवर्तन नहीं कर सकती।

8. कम्पनी अधिनियम, 1956 में सिर्फ वित्तीय संस्थाओं, सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों तथा अनुसूचित बैंकों को शेल्फ प्रोस्पेक्टस जारी करने की अनुमति थी परन्तु कम्पनी अधिनियम 2013 में को यह अधिकार दिया गया है कि वह उन कम्पनियों का निर्धारण करें जिन्हें रजिस्ट्रार के पास शेल्फ प्रविवरण जमा करना है।

9. इस अधिनियम के अन्तर्गत कम्पनी द्वारा अंशों को अतिरिक्त अन्य सभी प्रकार की प्रतिभूतियों की जानकारी रजिस्ट्रार के पास जमा कराना अनिवार्य की गई है।

10. इस अधिनियम के द्वारा कम्पनी द्वारा अंशों के वापिस क्रय करने के प्रावधानों को सरल किया गया है।

11. जमाओं से संबंधित विषयों के बारे में गैर-बैंकिंग वित्तीय संस्थाएं अब भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा निर्धारित नियमों से नियंत्रित होगी न कि कम्पनी अधिनियम के प्रावधानों से।

12. इस अधिनियम के अनुसार, कम्पनी के समामेलन के 18 महीनों के भीतर की जाने वाली वार्षिक व्यापक सभा की समय सीमा घटा कर 9 महीने कर दी गई है। अब कम्पनी को अपने वित्तीय वर्ष की समाप्ति से 9 माह के अन्दर अपनी सामान्य सभा का आयोजन करना होगा। अन्य दशाओं में वित्तीय वर्ष की समाप्ति के 6 माह के अन्दर।

13. इस अधिनियम के अन्तर्गत अब प्रत्येक कम्पनी को अपनी लेखा पुस्तकें इलैक्ट्रानिक रूप में रखनी अनिवार्य है तथा कम्पनी को अपने वित्तीय विवरण इलैक्ट्रानिक रूप में तैयार करना तथा जमा करना अनिवार्य है। इन दस्तावेजों को अब कम्पनी एक साथ जमा करवा सकती है।

14. इस अधिनियम में कम्पनी अधिनियम, 1956 के अधीन गठित की गई कमेटी का नाम बदलकर कर दिया गया है। अब को एक अर्ध न्यायिक अधिकार सत्ता प्रदान की गई है।

15. इस अधिनियम के अन्तर्गत प्रत्येक कम्पनी को किसी वित्तीय वर्ष में निर्दिष्ट बिक्री व शुद्ध लाभ होने पर एक निगमित सामाजिक उत्तरदायित्व समिति का गठन करना अनिवार्य होगा। जिसका मुख्य कार्य अनुसूची VII की क्रियाओं के सम्बन्ध में आर्थिक व सामाजिक कल्याण हेतु नीतियां बनाना होगा।

16. इस अधिनियम में यह अनिवार्य कर दिया गया है कि निर्धारित वर्ग या वर्गों की कम्पनियों में कम से कम एक महिला निदेशक अवश्य हो, इसके अतिरिक्त, यह भी अनिवार्य कर दिया गया है कि संचालक मण्डल का कम से कम एक संचालक गत वर्ष में कम से कम 182 दिन भारत में रहा हो।

17. प्रत्येक सूचीबद्ध, कम्पनी (Listed Company) के संचालक मण्डल में कुल संचालकों की 1/3 संख्या स्वतंत्र संचालकों (Independent Directors) की हो। स्वतंत्र संचालक गैर-शासनिक (Non-Executive) होंगे।

18. इस अधिनियम के अनुसार एक कम्पनी के संचालकों की अधिकतम संख्या 12 से बढ़ाकर 15 कर दी गई है तथा अब एक व्यक्ति 15 के स्थान पर अधिकतम 20 कम्पनियों का संचालक बन सकता है, परन्तु वह एक ही समय में 10 से ज्यादा सार्वजनिक कम्पनियों का संचालक नहीं बन सकता।

19. यदि कोई संचालक अपने पद से त्याग-पत्र देता है तो उसे उस त्याग-पत्र की एक प्रति 30 दिन के अन्दर रजिस्ट्रार के पास जमा करवानी होगी।

20. इस अधिनियम के द्वारा राजनैतिक चन्दा देने की पिछले तीन वर्षों के औसत शुद्ध लाभ की सीमा को 5% से बढ़ाकर 7.5% कर दिया गया है।

21. इस अधिनियम की धारा 186 के अनुसार 'ऋण' शब्द के अन्तर्गत ऋण-पत्रों को सम्मिलित नहीं किया जाएगा।

22. इस अधिनियम के अन्तर्गत कम्पनी द्वारा अपने संचालकों को ऋण देने, किसी संबन्धित पक्षकार से व्यवहार करने या किसी संचालक अथवा अन्य व्यक्ति को कम्पनी या सहायक कम्पनी में किसी लाभ के पद पर नियुक्त करने के लिए केन्द्रीय सरकार की अनुमति लेना आवश्यक नहीं है।

23. इस अधिनियम के अन्तर्गत प्रबन्ध संचालक अथवा पूर्णकालिक संचालक अथवा प्रबन्धक की नियुक्ति के सम्बन्ध में पूरी की जाने वाली शर्तें सार्वजनिक व निजी कम्पनियों पर समान रूप से लागू होगी।

24. इस अधिनियम की धारा 447 के अन्तर्गत 'कपट' को परिभाषित करते हुए नया प्रावधान किया गया है। इसमें कपट हेतु कठोर सजा का भी प्रावधान किया गया है जबकि 1956 के अधिनियम में कपट को लेकर कोई प्रावधान नहीं था।

25 नये अधिनियम के अन्तर्गत एक कम्पनी के लिए प्रत्येक वर्ष में कम से कम 4 सभाएं करना आवश्यक है तथा दो सभाओं के बीच 120 दिन से ज्यादा का अन्तर नहीं होना चाहिए। इस प्रकार 1956 के अधिनियम की कम्पनी द्वारा त्रैमासिक (Quarterly Meeting) की अनिवार्यता को बदल दिया गया है।

26. इस अधिनियम में ऋणी कम्पनियों के पुर्नजीवन तथा पुर्नस्थापन (Revival and Rehabitation) का प्रावधान किया गया है तथा इसके लिए अंतरिम प्रशासक की नियुक्ति अनिवार्य की गई है।

27. नये अधिनियम के अन्तर्गत केन्द्रीय सरकार को निजी कम्पनी की अधिसूचना जारी करना अनिवार्य नहीं है।

28. इस अधिनियम के अन्तर्गत मध्यस्थता तथा सुलह हेतु विशेषज्ञों के पैनल के गठन की व्यवस्था की गई है। यह पैनल पक्षकारों की प्रार्थना पर केन्द्रीय सरकार के सामने की जाने वाली कार्यवाही में मध्यस्थता करेगा।

3.3 कम्पनी अधिनियम के अन्तर्गत प्रशासनिक अधिकारी (Administrative Authorities Under the Companies Act)

कम्पनी अधिनियम के अन्तर्गत विभिन्न स्तरों पर कम्पनी प्रशासन के साथ व्यवहार करने वाले विभिन्न प्रशासनिक अधिकारी निम्नलिखित हैं:

1. नेशनल कम्पनी लॉ ट्रिव्यूनल (National Company Law Tribunal)
2. केन्द्रीय सरकार (Central Government)
3. अपिलेट ट्रिब्यूनल (Appellate Tribunal)
4. कम्पनी रजिस्ट्रार (Registrar of Companies)
5. राष्ट्रीय वित्तीय प्रतिवेदन प्राधिकरण (National Financial Reporting Authority)

6. सरकारी निस्तारक (Official Liquidator)

7. भारतीय प्रतिभूति एवं विनिमय बोर्ड (Securities and Exchange Board of India- SEBI)

8. कोर्ट (Court)

4. सारांश (Summary)

भारतीय कम्पनी अधिनियम मुख्य रूप से इंग्लैण्ड के कम्पनी अधिनियम पर आधारित है जिसे कम्पनी संगठन का आधार स्तम्भ माना जाता है। भारतीय कम्पनी अधिनियम में देश की व्यापारिक तथा आर्थिक दशाओं को ध्यान में रखते हुए समय-समय पर अनेक संशोधन किये गये। तथा कम्पनी अधिनियम, 2013 इसी कड़ी का परिणाम है ताकि कम्पनियों से सम्बन्धित अधिनियम को मजबूत बनाया जा सके एवं साथ ही निवेशकों के हितों का संरक्षण किया जा सके।

5. प्रस्तावित पुस्तकें (Suggested Reading)

		Publisher
Company Law	- MC Kuchal	Vikas Publishing House
Company Law	- N D Kapoor	Sultan Chand & Sons
Company Law and Auditing	- A K Tandon	Kalyani Publications

नमूने के लिए प्रश्न (Sample Question)

1. भारतीय कम्पनी अधिनियम के इतिहास का संक्षेप में वर्णन कीजिए। क्या भारतीय कम्पनी अधिनियम ब्रिटिश कम्पनी अधिनियम से प्रभावित है।

   Discuss briefly the history of company law in India. Is Company law of India influenced by the British Company Law?

2. भारतीय कम्पनी अधिनियम, 2013 की मुख्य विशेषताओं का वर्णन कीजिए। क्या आप यह समझते हैं कि यह पहले के कम्पनी अधिनियमों में सुधार है?

   Discuss the features of the Indian Companies Act, 2013. Do you think it is an improvement over earlier acts?

3. कम्पनी अधिनियम के प्रशासन से सम्बन्धित विभिन्न एजेंसियों की व्याख्या कीजिए।

   Explain the various agencies concerned with administration of Companies Act in India.

B.Com - II

Subject : Company Law & Auditing **Writer : Pawan Singla**

Lesson No : 1 (A) **Updated By : Ashu K. Garg**

परिचय: अर्थ, विशेषताएं एवं कम्पनियों के प्रकार; कम्पनियों का निर्माण एवं समामेलन

(Introduction: Meaning, Characteristics, Types of Companies; Promotion and Incorporation of Companies)

अध्याय की रूपरेखा (Structure of the Lesson)

1. परिचय (Introduction)
2. अध्याय के उद्देश्य (Objectives of the Chapter)
3. विषय सामग्री का प्रस्तुतिकरण (Presentation of the Contents)
   - 3.1 कम्पनी का अर्थ
     - 3.1.1 कम्पनी की विशेषताएं
     - 3.1.2 समामेलन के लाभ
   - 3.2 कम्पनी का निर्माण
     - 3.2.1 प्रवर्तन
     - 3.2.2 कम्पनी का समामेलन
     - 3.2.3 व्यापार प्रारम्भ करने का प्रमाणपत्र
   - 3.3 संयुक्त पूंजी वाली कम्पनियों के प्रकार
     - 3.3.1 समामेलन के आधार पर
     - 3.3.2 दायित्व के आधार पर
     - 3.3.3 स्वामित्व के आधार पर
     - 3.3.4 अन्य कम्पनियां
   - 3.4 निजी कम्पनी का सार्वजनिक कम्पनी में परिवर्तन
   - 3.5 सार्वजनिक कम्पनी का निजी कम्पनी में परिवर्तन
4. निष्कर्ष (Conclusion)
5. प्रस्तावित पुस्तकें (Suggested Readings)
6. नमूने के लिये प्रश्न (Sample Questions)

1. परिचय (Introduction)

गत दो शताब्दियों से विश्व के उत्पादन में बहुत परिवर्तन हुए हैं, अर्थात् एक ओर तो औद्योगिक क्रान्ति हुई तथा दूसरी ओर बढ़े पैमाने पर उत्पादन प्रणाली का विकास। विश्व की बढ़ती हुई आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए अधिक मात्रा में वस्तुओं के उत्पादन की आवश्यकता अनुभव की जाने लगी जिसके लिए बड़े पैमाने पर पूँजी की व्यवस्था करना अनिवार्य-सा प्रतीत होने लगा। अत: बड़े व्यापार के संचालन के लिए जितनी मात्रा में पूंजी आवश्यक थी, उसे पूरा करना एकाकी व्यापार या साझेदारी के लिए सम्भव नहीं था। इसके फलस्वरूप संयुक्त पूंजी कम्पनी का उद्गम हुआ।

2. अध्याय के उद्देश्य (Objectives of the Chapter)

इस अध्याय के निम्न उद्देश्य हैं :

1. कम्पनी का अर्थ, विशेषताएं एवं लाभ बताना।
2. कम्पनी के निर्माण की प्रक्रिया के बारे में जानकारी देना।
3. कम्पनी के प्रकार बताना।
4. निजी कम्पनी को सार्वजनिक कम्पनी में तथा सार्वजनिक कम्पनी को निजी कम्पनी में किस प्रकार बदला जाता है।

3. विषय-सामग्री का प्रस्तुतीकरण (Presentation of Contents)

अध्याय की विषय-सामग्री का प्रस्तुतीकरण निम्न प्रकार से हैं:-

3.1 कम्पनी का अर्थ (Meaning of Company) :

आधुनिक व्यापार के क्षेत्र को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि एकाकी व्यापारी या सांझेदारी फर्म जैसे व्यावसायिक स्वरूप इस स्थिति में नहीं है कि वे आज के प्रतिस्पर्धात्मक बाजार में टिक सके क्योंकि इस प्रतिस्पर्धा का सामना करने के लिए जिस साहस और साधनों की आवश्यकता होती है उनको जुटाना एकाकी व्यापारी या फर्म की क्षमता के बाहर है। आज व्यापार राष्ट्रीय सीमाओं को लांघकर अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में प्रवेश कर गया है। 1 जनवरी 1995 से लागू हुए नए अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार समझौते जिसे WTO (World Trade Organisation) का नाम दिया गया है जो पहले से चल रहे बहुचर्चित 'GATT' के स्थान पर लागू किया गया है, ने व्यापारिक जगत के सामने एक बड़ी चुनौती पैदा कर दी है कि आज बाजार में वही टिक सकेगा जो न केवल राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा का मुकाबला करने की क्षमता रखता है। इस स्थिति में व्यावसायिक संगठन का कम्पनी ही एक ऐसा विकल्प है जो इस प्रतिस्पर्धा का मुकाबला कर सकता है।

कम्पनी का अर्थ समझने के लिए कम्पनी शब्द का अर्थ समझना जरूरी है। कम्पनी शब्द का अर्थ व्यक्तियों के ऐसे समूह से लिया गया है जो सामान्य उद्देश्य के लिए संगठित होते हैं। यह शब्द लेटिन भाषा से लिया गया है जो (Companis) शब्द से बना है। इस शब्द में 'COM' का अर्थ है साथ-साथ और 'PANIS' का अर्थ है रोटी। अर्थात् एक साथ भोजन करने वाले व्यक्ति। आजकल कम्पनी का आशय ऐसे संघ से लगाया जाता है जिसमें संयुक्त पूंजी होती है। जिन्हें संयुक्त पूंजी वाली कम्पनी (Joint Stock Company) के नाम से जाना जाता है।

कम्पनी का सही अर्थ समझने के लिए विभिन्न विद्वानों द्वारा दी गई परिभाषाएं समझना जरूरी है लेकिन कानून के नजरिये से भारतीय कम्पनी अधिनियम 1956 में दी गई कम्पनी की परिभाषा को समझना और भी ज्यादा जरूरी है क्योंकि विद्वानों द्वारा दी गई परिभाषाओं को कानून से मान्यता नहीं है लेकिन ज्ञान की दृष्टि से विभिन्न विद्वानों के मतों का अध्ययन किया जा सकता है।

भारत में कम्पनियों पर वैधानिक नियंत्रण कम्पनी अधिनियम, 1956 (अब कम्पनी अधिनियम, 2013) द्वारा होता है, इसलिए सबसे पहले कम्पनी अधिनियम, 1956 की धारा 3 (1) (i) में दी गई परिभाषा को समझना जरूरी है जो इस प्रकार से है:

"कम्पनी का अर्थ ऐसी कम्पनी से है जिसका निर्माण एवं पंजीकरण इस अधिनियम के अधीन हुआ हो या ऐसी 'विद्यमान कम्पनी' से है जिसका निर्माण एवं पंजीकरण इस अधिनियम से पूर्व के किसी कम्पनी अधिनियम के अधीन हुआ हो।"

कम्पनी की इस परिभाषा में 'विद्यमान कम्पनी' से आशय ऐसी कम्पनी से है जिसका निर्माण एवं पंजीकरण नीचे लिखे किसी अधिनियम के अधीन हुआ हो:

1. भारतीय कम्पनी अधिनियम 1866 से पूर्व के कम्पनियों से सम्बन्धित अधिनियम।
2. भारतीय कम्पनी अधिनियम 1866
3. भारतीय कम्पनी अधिनियम 1882
4. भारतीय कम्पनी अधिनियम 1913
5. हस्तांतरिक कम्पनियों की रजिस्ट्री का आर्डिनेन्स 1942
6. ऊपर दिए हुए अधिनियमों या आर्डिनेन्सों की समता का कोई भी कानून।
   (i) जो विलियत क्षेत्र या पार्ट 'B' स्टेट (जम्मू एवं कश्मीर को छोड़कर) या उनके किसी भाग में लागू होता है।
   (ii) बैंकिंग, इंश्योरेंस और वित्तीय कारपोरेशन की दशा में, जम्मू और कश्मीर राज्य में, या इसके किसी भाग में जम्मू एवं कश्मीर (एक्सटेशन ऑफ लॉज) अधिनियम 1956 के शुरू होने से पहले लगता हो, अन्य कारपोरेशन की दशा में सेन्ट्रल लॉज (एक्सटेंशन टू जम्मू एवं कश्मीर) अधिनियम 1968 के शुरू होने से पूर्व लागू हो।
7. दि पूर्तगीज कामर्शियल कोड, जहाँ तक इसका सम्बन्ध Sociedates anomimas से है। कम्पनी अधिनियम 1956 की धारा 3 (1) (i) एवं धारा 3 (1) (ii), में जो परिभाषा दी गई है उसमें कम्पनी का अर्थ स्पष्ट नहीं है इसलिए कुछ विद्वानों की परिभाषाएं जानना आवश्यक है जो इस प्रकार हैं:
   (i) By Prof. Haney : ''कम्पनी विधान द्वारा निर्मित एक कृत्रिम व्यक्ति है जिसका पृथक् वैधानिक अस्तित्व होता है, जिसे अविच्छिन्न उत्तराधिकार प्राप्त होते हैं तथा जिसकी एक सार्वमुद्रा होती है।''
   (ii) By Lord Lindley : "कम्पनी विभिन्न व्यक्तियों का एक समूह है जो कि द्रव्य या द्रव्य के बराबर का अंशदान एक संयुक्त कोष में जमा करते हैं और इसका प्रयोग एक निश्चित उद्देश्य के लिए करते हैं। इस प्रकार संयुक्त कोष मुद्रा में प्रकट किया जाता है जो कम्पनी की पूंजी

होती है। जो व्यक्ति इसमें अंशदान करते हैं, कम्पनी के सदस्य कहलाते हैं। पूंजी के उस अनुपात पर उस व्यक्ति का अधिकार होता है जो उसके द्वारा क्रय किए गए अंश के बराबर होता है।"

कम्पनी की ऊपर दी गई परिभाषाओं के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि कम्पनी विधान द्वारा निर्मित एक वैधानिक व्यक्ति है जिसका निर्माण एवं पंजीकरण कम्पनी अधिनियम के अधीन होता है जिसका कोई विशेष उद्देश्य होता है और इसका दायित्व साधारणत: सीमित होता है तथा इसका अस्तित्व अपने सदस्यों से अलग होता है और इसकी अपनी एक सार्वमुद्रा होती है।

3.1.1 कम्पनी की विशेषताएं

1. **पंजीकृत संगठन :** कम्पनी अधिनियम 1956 के अनुसार कम्पनी का निर्माण कानून के द्वारा होता है। अर्थात् यह एक ऐसा संगठन है जिसका पंजीकरण कराना अनिवार्य है। बिना पंजीकरण के कम्पनी अस्तित्व में नहीं आ सकती। एकाकी व्यापार एवं सांझेदारी में पंजीकरण कराना ऐच्छिक है लेकिन यदि एक साझेदारी संस्था में बैंकिंग व्यापार की दशा में 20 से अधिक सदस्य हो जाएं तो कम्पनी अधिनियम 1956 के अनुसार इनका पंजीकरण कराना अनिवार्य है अन्यथा यह अवैध संघ जाने जाएंगे। यह धारा व्यापार करने वाले संयुक्त हिन्दू परिवार पर नहीं लगती है।

2. **कृत्रिम व्यक्ति :** एक कम्पनी की पंजीकरण के बाद कृत्रिम व्यक्ति का दर्जा दिया जाता है जिसका निर्माण एवं समापन कानून के द्वारा होता है। जो अधिकार एवं दायित्व एक मनुष्य के होते हैं उतने ही अधिकार एवं दायित्व एक कम्पनी के होते हैं। जिस प्रकार व्यक्ति कोई वस्तु या सम्पत्ति का क्रय-विक्रय कर सकता है, उसी प्रकार कम्पनी भी कर सकती है। जैसे एक व्यक्ति दूसरे के साथ अनुबन्ध कर सकता है उसी तरह कम्पनी भी दूसरे व्यक्तियों के साथ अनुबन्ध कर सकती है। कम्पनी दूसरे व्यक्तियों तथा दूसरे व्यक्ति कम्पनी पर दावे कर सकते हैं। कम्पनी एवं मनुष्य में केवल इतना अन्तर है कि कम्पनी का निर्माण एवं समापन कानून द्वारा होता है जबकि मनुष्य का जन्म एवं मरण कानून के द्वारा नहीं होता है। दूसरे कम्पनी को भारतीय विधान में एक नागरिक का दर्जा हासिल नहीं है इसलिए इसे वो मौलिक अधिकार नहीं मिल सकते जो भारतीय संविधान द्वारा एक भारतीय नागरिक को दिए गए हैं।

3. **पृथक् वैधानिक अस्तित्व :** कम्पनी का अस्तित्व अपने सदस्यों से भिन्न है। इसका अभिप्राय यह हुआ कि कम्पनी अलग है और इसके सदस्य अलग हैं। कोई भी व्यक्ति जो कम्पनी की पूंजी में अंशदान करता है, कम्पनी का सदस्य कहलाता है। लेकिन कम्पनी अपने आप में एक व्यक्ति का दर्जा हासिल करती है। इसलिए यह सदस्यों से बिल्कुल अलग है। इस प्रकार कम्पनी पर चलाया गया कोई दावा इसके सदस्यों पर चलाया गया दावा नहीं समझना चाहिए। कम्पनी के पृथक् अस्तित्व को समझने के लिए सालोमन बनाम सालोमन एण्ड कम्पनी (1897) के विवाद में दिया गया निर्णय महत्वपूर्ण है।

   सालोमन एक चमड़े के जूते बनाने वाला व्यापारी था। इसने सालोमन एण्ड कम्पनी लि. नाम की एक कम्पनी की स्थापना की और अपना व्यापार इस कम्पनी को बेच दिया। इस कम्पनी में वह स्वयं उसकी पत्नी, उसकी लड़की एवं चार लड़के (कुल मिलाकर सात) सदस्य बने। सालोमन को छोड़कर बाकी सबके पास एक-एक अंश था। सालोमन ने 20,000 पौंड के अंश तथा 10,000 पौंड के ऋणपत्र लिए। ऋणपत्र कम्पनी की सम्पत्तियों को रहन रखकर निर्गमित किए गए। कुछ समय बाद कम्पनी का विघटन हो गया और विघटन के समय कम्पनी की सम्पत्तियाँ सुरक्षित

लेनदारों का भुगतान करने के लिए पर्याप्त थीं। लेकिन असुरक्षित लेनदारों के लिए कुछ नहीं बचता था। असुरक्षित लेनदारों का कहना था कि कम्पनी और सालोमन में कोई फर्क नहीं, यह अपने से कोई ऋण नहीं ले सकता था इसलिए उन्हें पहले भुगतान मिलना चाहिए। हाऊस ऑफ लार्डस ने यह निर्णय दिया कि क्योंकि कम्पनी का निर्माण विधिपूर्वक हुआ है। इसलिए कम्पनी की सम्पत्तियां कम्पनी की हैं न कि सालोमन की कम्पनी सदस्यों से अलग है इसलिए सालोमन अपने ऋणपत्रों की रकम पहले ले सकता है क्योंकि वे सुरक्षित लेनदार हैं।

इस प्रकार कम्पनी के सारे अंश व्यवहारिक रूप में चाहे एक व्यक्ति के पास हों पर कानून की दृष्टि में कम्पनी का अस्तित्व अलग है और वह विवरण महत्वहीन है कि उसके सब संचालक या सदस्य एक परिवार के हैं या यह एक व्यक्ति वाली कम्पनी है।

कुछ दशाओं में कम्पनी के पृथक् अस्तित्व को मान्यता नहीं है जैसे :

(i) जब कम्पनी का प्रयोग किसी कपटपूर्ण उद्देश्य के लिए किया जा रहा हो।

(ii) यदि कम्पनी का निर्माण केवल कर बचाने के उद्देश्य से किया गया हो।

(iii) यदि कम्पनी का नियंत्रण किसी विदेशी दुश्मन के अधिकार में हो।

4. **अविछिन्न उत्तराधिकार :** कम्पनी का अस्तित्व स्थायी होता है। इसका जीवन इसके सदस्यों पर निर्भर नहीं करता। किसी सदस्य की मृत्यु या अंश हस्तांतरण की दशा मे नए व्यक्ति अंशधारी बन जाते हैं।

   एक कम्पनी की साधारण सभा के समय उपस्थित उस समय मारे गए जब एक शत्रु देश ने हाइड्रोजन बम वहाँ फेंक दिया। इस प्रकार सभी सदस्यों की मृत्यु के बाद भी कम्पनी बनी रही। इसलिए कहा गया है कि:–

   "Members may come, Members may go,

   But company will go for ever"

   इस प्रकार सदस्यों की मृत्यु, किसी सदस्य का पागल होना, या किसी सदस्य के कम्पनी छोड़ने पर भी कम्पनी का अस्तित्व बना रहेगा।

5. **दायित्व :** कम्पनी के सदस्य का दायित्व उसके द्वारा खरीदे गए अंश के मूल्य तक सीमित होता है। यद्यपि कुछ कम्पनियों में दायित्व असीमित होता है लेकिन ऐसी कम्पनियां अब प्रचलन में नहीं हैं। भारत में प्राय: सीमित दायित्व वाली कम्पनियां ही पायी जाती हैं।

6. **प्रजातांत्रिक प्रबन्ध :** कम्पनी एक कृत्रिम व्यक्ति अवश्य है लेकिन एक मनुष्य की तरह काम करने की क्षमता इसमें नहीं होती। इसलिए कम्पनी का कार्य इसके सदस्यों के प्रतिनिधियों द्वारा किया जाता है जिन्हें संचालक (Director) कहते हैं। कम्पनी के सदस्य संचालकों का चुनाव करते हैं और कम्पनी के प्रबन्ध एवं नियंत्रण का कार्य उन्हें सौंप दिया जाता है। ये संचालक किसी भी प्रकार की गलती होने पर व्यक्तिगत रूप से भी उत्तरदायी ठहराये जा सकते हैं।

7. **अंश हस्तांतरण :** अंश हस्तांतरण से हमारा अभिप्राय अपने हिस्सों को किसी दूसरे व्यक्ति को बेचना या किसी दूसरे व्यक्ति के नाम करने से है। कम्पनी अधिनियम 2013 की धारा 44 के अनुसार प्रत्येक सदस्य अपने अंशों को स्वतंत्रतापूर्वक अन्य कम्पनियों को हस्तांतरित कर सकता

है लेकिन कुछ विशेष परिस्थितियों में कंपनी अपने पार्षद अंतर्नियमों द्वारा ऐसे अंशों के हस्तांतरण पर प्रतिबंध लगा सकती है।

8. **कार्यक्षेत्र की सीमाएँ :** कम्पनी के मूल उद्देश्य उसे पार्षद सीमा नियम (Memorandum of Association) में दिये होते हैं तथा इन उद्देश्यों की पूर्ति एवं दैनिक कार्य संचालन हेतु नियम इसके पार्षद अन्तर्नियमों में दिए होते हैं। इस प्रकार एक कम्पनी इन नियमों से बाहर नहीं जा सकती। इसलिए ये दोनों प्रपत्र बहुत सोच समझकर तैयार किए जाते हैं। ताकि कम्पनी अपना कार्य सही ढंग से चला सके।

9. **लाभ के लिए ऐच्छिक संघ :** कम्पनी का मुख्य उद्देश्य लाभ कमाना होता है। कम्पनी जो भी लाभ कमाती है उसका कुछ हिस्सा सदस्यों में बांट देती है और कुछ विकास कार्यों में पुनर्विनियोजित कर दिया जाता है। कोई भी व्यक्ति स्वेच्छा से कम्पनी का सदस्य बन सकता है। बलपूर्वक किसी को कम्पनी का सदस्य नहीं बनाया जा सकता।

10. **अभियोग चलाना :** कम्पनी की सभी कार्यवाही कम्पनी के नाम से चलती है इसलिए यदि किसी पर अभियोग चलाना हो तो वह भी कम्पनी के नाम से ही चलेगा। कम्पनी दूसरे व्यक्तियों पर अपने नाम से तथा दूसरे व्यक्ति कम्पनी पर दावा कर सकते हैं।

11. **सार्वमुद्रा चलाना :** सार्वमुद्रा कम्पनी के अलग अस्तित्व का प्रतीक है। कम्पनी द्वारा किया गया कोई भी कार्य तब तक मान्य नहीं होता है जब तक उस पर कम्पनी की मोहर न लगी हो। इस प्रकार कोई प्रपत्र या बिल आदि जारी किया जाता है तो उस पर कम्पनी की मोहर लगाना अनिवार्य है। अन्यथा वह प्रपत्र या बिल कम्पनी की ओर से जारी किया हुआ नहीं माना जाएगा। यह सार्वमुद्रा कम्पनी के हस्ताक्षर का काम करती है। सार्वमुद्रा के उपयोग सम्बन्धी नियमों का विवरण कम्पनी के अंतर्नियमों में होता है। कम्पनी (संशोधन) अधिनियम 2015 के अनुसार अब एक कम्पनी के लिए सार्वमुद्रा आवश्यक नहीं है।

12. **कम्पनी का समापन :** जिस प्रकार कम्पनी का निर्माण कानून द्वारा होता है, उसी प्रकार इसका समापन भी कानून द्वारा ही होता है। कम्पनी के समापन की विशेष विधियां हैं जिनके द्वारा कम्पनी का समापन किया जा सकता है।

3.12 समामेलन के लाभ (Advantages of Incorporation) :

व्यावसायिक संगठन के कम्पनी स्वरूप के लाभों की सूची बहुत लम्बी है लेकिन जब हम समामेलन के लाभों की बात करते हैं तो इसका अभिप्राय है कि एक एकाकी व्यापार या साझेदारी की अपेक्षा एक कम्पनी स्वरूप को अपनाने से हमें क्या-क्या अतिरिक्त लाभ हो सकते हैं। एकाकी व्यापार में समामेलन की आवश्यकता ही नहीं होती जबकि सांझेदारी में वह ऐच्छिक होता है। कम्पनी संगठन एक ऐसा स्वरूप है जिसका निर्माण समामेलन के आधार पर होता है। इसलिए इन लाभों का अध्ययन करना अनिवार्य है जो एक कम्पनी संगठन या एकाकी व्यापार के अतिरिक्त प्राप्त होते हैं जो इस प्रकार हैं-

1. **अलग अस्तित्व (Separate Legal Entity) :** एक कम्पनी का अस्तित्व उसके सदस्यों से अलग होता है जबकि सांझेदारी में ऐसा नहीं होता। किसी सदस्य की मृत्यु, दिवालिया या पागलपन से कम्पनी के अस्तित्व को कोई खतरा नहीं होता। इसलिए इसका जीवन स्थाई होता है जबकि सांझेदारी फर्म का जीवन अस्थाई होता है।

2. **अंश हस्तांतरण :** एक निजी कम्पनी को छोड़कर प्रत्येक कम्पनी में अंशों के हस्तांतरण की पूरी स्वतंत्रता है। अंश हस्तांतरण के लिए एक दूसरे सदस्य की सलाह की आवश्यकता नहीं पड़ती। अंश हस्तांतरण का सबसे बड़ा लाभ यह है कि सदस्य को जब भी नकद पैसे की आवश्यकता हो, वह अपने अंश बाजार में बेचकर नकद राशि प्राप्त कर सकता है। जबकि सांझेदारी में ऐसा नहीं किया जा सकता।

3. **सीमित दायित्व :** एक कम्पनी में सदस्यों का दायित्व उनके अंशों के मूल्य तक सीमित होता है अथात् यदि कम्पनी को हानि अधिक हो जिससे कम्पनी का समापन हो जाए तो समापन के समय यदि लेनदारों का भुगतान करने के लिए कम्पनी की सम्पत्ति पर्याप्त न हो तो सदस्यों से व्यक्तिगत तौर पर कुछ नहीं मांगा जा सकता, केवल उनके अंश का पैसा डूब सकता है जबकि सांझेदारी में दायित्व असीमित होता है। प्रत्येक सदस्य सामूहिक एवं व्यक्तिगत रूप में फर्म के ऋणों का भुगतान करने के लिए जिम्मेदार ठहराया जा सकता है।

4. **अधिक पूंजी :** एक निजी कम्पनी में सदस्यों की संख्या 200 तक सीमित होती है लेकिन अन्य कम्पनियों में सदस्यों की संख्या की कोई सीमा निश्चित नहीं है इसलिए अधिक से अधिक सदस्य बनाकर कितनी भी पूंजी इकट्ठी की जा सकती है। इस प्रकार ऐसे उपक्रम जिनके लिए अधिक पूंजी की आवश्यकता होती है उन्हें कम्पनी ही चला सकती है, सांझेदारी फर्म या एकाकी व्यापारी नहीं।

5. **प्रबन्ध एवं नियन्त्रण :** कम्पनी में प्रबन्ध का कार्य योग्य एवं निपुण प्रबन्धकों द्वारा किया जाता है जिन्हें कम्पनी अच्छे पारिश्रमिक के आधार पर नियुक्त करती हैं। इस प्रकार यह पूंजी एवं प्रबंध कला का मिश्रण है अर्थात् यदि आपके पास पूंजी है लेकिन प्रबंध कला नहीं तो कम्पनी संगठन में इन दोनों को मिलाया जा सकता है। जहां तक नियन्त्रण की बात है, कम्पनी में नियन्त्रण हासिल करने के लिए ज्यादातर अंशों को खरीदने की आवश्यकता होती है क्योंकि नियन्त्रण का कार्य प्रजातांत्रिक ढंग से होता है अर्थात् जिसके पक्ष में ज्यादातर अंशधारी होते हैं या अंश होते हैं, वही व्यक्ति संचालक के रूप में नियन्त्रक का कार्य संभालता है जबकि सांझेदारी फर्म में ऐसा नहीं होता।

6. **आयकर सम्बन्धी रियायतें :** सरकार कम्पनी संगठन को आयकर के सम्बन्ध में कुछ विशेष रियायतें प्रदान करती है जो एक फर्म या अन्य संगठनों को प्राप्त नहीं है।

7. **जनता का विश्वास :** कम्पनी का एक वैधानिक अस्तित्व होने के कारण इस संगठन पर उपभोक्ता कर्मचारी एवं विनियोगकर्त्ता सभी को अधिक विश्वास होता है जिससे कम्पनी अपने उत्पाद को ज्यादा से ज्यादा मात्रा में बेचकर अधिक लाभ कमा सकती है।

3.2 "कम्पनी का निर्माण" (Formation of Company)

किसी भी कम्पनी के निर्माण की तीन अवस्थाएं हैं-

1. प्रवर्तन (Promotion)
2. समामेलन (Incorporation)
3. व्यापार प्रारंभ (Commencement of Business)

3.2.1 प्रवर्तन (Promotion)

प्रवर्तन कम्पनी के निर्माण की पहली सीढ़ी है। जब कोई व्यक्ति किसी कम्पनी के निर्माण की बात सोचता है तो वह उन सभी बातों पर विचार-विमर्श करता है जो एक कम्पनी को चलाने के लिए चाहिए जैसे कम्पनी का व्यवसाय क्या होगा? इसके लिए किस-किस वस्तु की आवश्यकता होगी? ये वस्तुएं कहां उपलब्ध होंगी, कितनी पूंजी की आवश्यकता होगी, क्या-क्या कानूनी कार्यवाही होगी? आदि। जिस व्यक्ति द्वारा यह विचार-विमर्श किया जाता है, उसे प्रवर्तक (Promoter) कहा जाता है।

लार्ड ब्लैकबर्न के अनुसार-

"प्रवर्तक शब्द उन व्यक्तियों के सम्बोधित करने का एक सूक्ष्म और सुविधाजनक ढ़ंग है जो उस मशीन को चलाते हैं जिसके द्वारा अधिनियम उन्हें एक समामेलित कम्पनी बनाने के योग्य बना देता है।"

प्रवर्तक की परिभाषा के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि प्रवर्तक एक ऐसा व्यक्ति है जो कम्पनी के निर्माण से सम्बन्धित सभी महत्वपूर्ण कार्य सम्पन्न करता है। एक प्रवर्तक द्वारा किए जाने वाले कार्य निम्नलिखित हैं-

1. **विचारों की खोज :** प्रवर्तक का सबसे पहला कार्य है कम्पनी के निर्माण की योजना बनाना तथा प्रारंभिक अनुसंधान करना। जब प्रवर्तक के दिमाग में कम्पनी बनाने का विचार आता है तो वह इसे सार्थक करने के लिए आवश्यक कार्य जैसे विशेषज्ञों से सलाह करना, आवश्यक पूंजी का अनुपात लगाना, संभावित प्रतियोगिता का अनुमान लगाना, श्रम एवं शक्ति के साधनों का पता लगाना, परिवहन एवं संदेशवाहन सम्बन्धी सुविधाओं आदि पर गंभीरता से विचार करता है।

2. **विस्तृत जांच पड़ताल :** प्रारंभिक विचार के बाद प्रवर्तक कम्पनी को असली रूप देने के लिए विस्तृत जांच पड़ताल करता है कि जो विचार उसके दिमाग में आया है, वह व्यवसायिक दृष्टि से ठीक रहेगा या नहीं। इसकी छानबीन के लिए वह विभिन्न विशेषज्ञों से सलाह लेता है तथा अपने आपको सभी तरह से संतुष्ट करने पर ही आगे कदम बढ़ाता है।

3. **कम्पनी का नाम एंव आवश्यक प्रलेख तैयार करना :** कम्पनी का नाम तय करते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि इस नाम से पहले से कोई कम्पनी पंजीकृत न हो तथा इस नाम पर सरकार को कोई आपत्ति न हो। इसके लिए कम्पनी रजिस्ट्रार से बातचीत की जा सकती है। नाम तय होने के बाद कम्पनी के पंजीकरण के लिए आवश्यक प्रलेख जैसे पार्षद सीमा नियम, पार्षद अन्तर्नियम, प्रारंभिक अनुबंध आदि को तैयार करना चाहिए।

4. **आवश्यक सामग्री एवं धन की व्यवस्था करना :** कम्पनी के निर्माण के लिए आवश्यक सामग्री जैसे जमीन, संयंत्र, कच्चा माल आदि के सम्बन्ध थे। बातचीत करना उन्हें क्रय करने के लिए आवश्यक धन उपलब्ध करना प्रवर्तक का कार्य है। इसलिए प्रवर्तक इस सामान को क्रय करने के लिए धन का अनुमान लगाता है तथा आवश्यक धनराशि को अंशों एवं ऋणपत्रों के जरिए एकत्र करने की व्यवस्था करता है।

5. **सरकार की अनुमति :** एक निश्चित सीमा से अधिक पूंजी जारी करने के लिए सरकार की अनुमति की आवश्यकता पड़ती है। इसके लिए पहले पूंजी नियंत्रक (Controller of Capital Issues) से अनुमति लेनी पड़ती थी लेकिन आजकल इसके स्थान पर भारतीय प्रतिभूति विनिमय बोर्ड (SEBI) की स्थापना की गई है।

6. **लाइसेंस प्राप्त करना :** औद्योगिक विकास एवं नियमबद्ध अधिनियम, 1951 के साथ संलग्न सूची में निर्दिष्ट उद्योग को आरंभ करने की दशा में लाइसेंस प्राप्त करना अनिवार्य है जिसे प्राप्त करने का कार्य प्रवर्तक द्वारा ही सम्पन्न किया जा सकता है।

प्रवर्तक की स्थिति:

आमतौर पर यह धारणा है कि प्रवर्तक कम्पनी का एजेन्ट, प्रन्यासी या मालिक है क्योंकि वह अपने कार्यों से कम्पनी को बाध्य करता है तथा अपने कार्यों का पारिश्रमिक प्राप्त करता है लेकिन यह धारणा गलत है क्योंकि जब तक कम्पनी अस्तित्व में नहीं आती, तब तक कोई व्यक्ति उसका एजेंट कैसे हो सकता है और न ही न्यासी (Trustee) वास्तव में कम्पनी का प्रवर्तक एक विश्वासाश्रित स्थिति में होता है क्योंकि कम्पनी का निर्माण तथा रचना उसके हाथ में होती है। प्रवर्तक निम्न विश्वासाश्रित कार्य करते हैं:-

1. **कोई गुप्त लाभ न कमाना :** प्रवर्तक कम्पनी की जानकारी के बिना प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कोई लाभ नहीं कमा सकता। अगर वह कोई लाभ कमाता है तो इसे इसकी पूरी रकम कम्पनी को लौटा देनी चाहिए।

2. **अपनी सम्पत्ति के विक्रय पर लाभ न कमाना :** यदि प्रवर्तक अपनी कोई निजी सम्पत्ति कम्पनी को बेचता है तो वह बिना सम्पूर्ण तथ्यों को प्रकट किये कोई लाभ नहीं ले सकता, यदि लेता है तो उसे कम्पनी को वापिस करना चाहिए।

प्रवर्तकों के अधिकार (Rights of Promoters)

1. **प्रारंभिक व्यय लेने का अधिकार :** कम्पनी के निर्माण से संबंधित अनेक व्यय प्रवर्तकों को करने होते हैं क्योंकि जब तक कम्पनी का पंजीकरण नहीं हो जाता, तब तक कम्पनी अस्तित्व में नहीं आती। इसलिए पंजीकरण होने तक जो भी व्यय होते हैं जैसे प्रारंभिक अनुसंधान के व्यय, विभिन्न प्रपत्र तैयार करने के व्यय आदि सभी प्रकार के व्यय प्रवर्तकों द्वारा किए जाते हैं। इसलिए इन व्ययों की राशि को प्राप्त करने का अधिकार प्रवर्तकों का होता है। इस सम्बन्ध में यदि कोई सूचना कम्पनी के अन्तर्नियमों में दी हुई हो तो उसका पालन अवश्य करना चाहिए।

2. **सह-प्रवर्तकों से अनुपातिक अंशदान लेने का अधिकार :** यदि किसी कम्पनी के प्रवर्तकों पर प्रविवरण में मिथ्या वर्णन के आरोप में कोई क्षतिपूर्ति करने का आदेश जारी किया जाता है तो प्रवर्तक इसे अनुपातिक आधार पर पूरा करेंगे। इसी प्रकार गुप्त लाभों की राशि को प्रवर्तक आधुनिक आधार पर पूरा करेंगे।

3. **पारिश्रमिक प्राप्त करने का अधिकार :** प्रवर्तक कम्पनी के निर्माण से संबंधित सभी कार्य सम्पन्न करता है, इसलिए उसे अपने इस कार्य के लिए कम्पनी से पारिश्रमिक प्राप्त करने का पूरा अधिकार है। यह पारिश्रमिक कमीशन, लाभ या एकमुश्त राशि के रूप में किया जा सकता है। कम्पनी ने प्रवर्तक से जो व्यवसाय या सम्पत्ति क्रय की है उस पर एक निश्चित कमीशन प्रवर्तक को दिया जा सकता है या प्रवर्तक द्वारा खरीदा हुआ व्यवसाय या सम्पत्ति कम्पनी को लाभ पर बेचा जा सकता है। इस प्रकार कमीशन या लाभ की राशि नकद राशि के रूप में या अंशों एवं ऋणपत्रों तथा अंशत: नकद एवं अंशत: अंशों एवं ऋणपत्रों के रूप में प्राप्त की जा सकती है।

प्रवर्तकों के दायित्व :

प्रवर्तक कम्पनी का जन्मदाता है इसलिए उसे कम्पनी के निर्माण से सम्बन्धित सम्पूर्ण अधिकार प्राप्त होते हैं लेकिन यदि इन अधिकारों पर दायित्वों की लगाम न डाली जाए तो इनका दुरूपयोग हो सकता है। कम्पनी के निर्माण से संबंधित जो भी कार्य प्रवर्तकों के दायित्वों का क्षेत्र बहुत व्यापक है जो निम्न प्रकार है-

1. कम्पनी की स्थापना के बाद यदि कम्पनी के नाम से कोई गुप्त लाभ प्रवर्तक कमाते हैं तो उस लाभ को कम्पनी को लौटाने का दायित्व प्रवर्तकों का है। लेकिन कम्पनी की स्थापना से पूर्व के लाभ के सम्बन्ध में नहीं।
2. कम्पनी के प्रविवरण में किसी भी प्रकार के मिथ्यावर्णन या कपट के लिए अंशधारियों के प्रति प्रवर्तक जिम्मेवार होंगे।
3. प्रवर्तक की मृत्यु या दिवालिया होने पर उसकी सम्पत्ति कम्पनी के लिए उत्तरदायी होगी।
4. प्रवर्तकों के कपट या कर्त्तव्यभंग के कारण यदि कम्पनी को कोई हानि होती है तो इस हानि की पूर्ति प्रवर्तकों से की जाएगी।
5. समापन के समय यदि सरकारी विस्तारक यह रिपोर्ट दाखिल करता है कि कम्पनी के निर्माण के समय प्रवर्तकों ने कपट किया है तो न्यायालय ऐसे दोषी व्यक्ति के लिए न्यायालय में सार्वजनिक जांच के आदेश दे सकता है।

प्रवर्तकों का दायित्व उस समय शुरू होता है जब वह प्रवर्तक के रूप में कार्य प्रारंभ करते हैं।

3.2.2 कम्पनी का समामेलन (Incorporation of Company)

कम्पनी के निर्माण की दूसरी अवस्था है पंजीकरण। जब तक कम्पनी का पंजीकरण नहीं हो जाता, तब तक कम्पनी अस्तित्व में नहीं आती। इसलिए पंजीकरण ही कम्पनी को वैधानिक व्यक्ति या कृत्रिम व्यक्ति का दर्जा प्रदान करता है। किसी कम्पनी के रजिस्ट्रेशन सम्बन्धी कार्याविधि निम्न प्रकार से सम्पन्न की जाती है-

I. **प्रारंभिक क्रियाएं :**

1. **पंजीकृत क्रियाएं :** सबसे पहले कम्पनी के रजिस्टर्ड होने वाले कार्यालय का स्थान तय करना जरूरी है। इस विषय में रजिस्ट्रार ऑफ कम्पनिज के पास वह सूचना भेजनी होती है कि कम्पनी का कार्यालय किस राज्य पर होगा, उसका पूरा पता लिखकर भेजना चाहिए। कम्पनी का रजिस्ट्रेशन उसी राज्य के रजिस्ट्रार के यहां होता है जिस राज्य में कम्पनी का कार्यालय होगा।
2. **कम्पनी का नाम :** कम्पनी के नाम के लिए एक निर्धारित आवेदन पत्र फार्म व iA, 100 रुपये फीस के साथ रजिस्ट्रार को नाम की उपलब्धि के लिए भेजा जाता है। इसके लिए कम से कम तीन नाम भेजे जाते हैं। नाम सोच-समझकर भेजना चाहिए तथा यह पहले से रजिस्ट्र्ड किसी कम्पनी के नाम से न मिलता हो। आवेदन प्राप्ति के 14 दिन के अन्दर-अन्दर रजिस्ट्रार वांछित सूचना भेज सकता है तथा तीन माह तक रजिस्ट्रार यह नाम किसी दूसरी कम्पनी को नहीं देता।
3. **पूंजी निर्गमन की सहमति :** एक निर्धारित सीमा एक करोड़ रुपये से अधिक पूंजी निर्गमित करने की दशा में केन्द्रीय सरकार की अनुमति लेना आवश्यक है। इस सम्बन्ध में पहले पूंजी नियंत्रक

(Controller of Capital Issues) से स्वीकृति लेनी पड़ती थी लेकिन आजकल इसके स्थान पर यह कार्य SEBI (Security Exchange Board of India) द्वारा सम्पन्न किया जाता है।

4. **लाइसैन्स प्राप्त कर :** यदि कम्पनी किसी ऐसे उद्योग की स्थापना करना चाहती है जो उद्योग विकास एवं नियंत्रक अधिनियम, 1951 के अन्तर्गत आता है तो इस सम्बन्ध में लाइसैन्स लेना अनिवार्य है जिसके लिए एक निर्धारित फार्म पर प्रार्थना-पत्र उद्योग मंत्रालय के सचिव के पास नई दिल्ली भेजना चाहिए।

5. **प्रविवरण तैयार करना :** यदि पूंजी प्राप्त करने के लिए अंश जनता को बेचने हों तो प्रवर्तकों को प्रविवरण का प्रारूप भी तैयार कर लेना चाहिए।

II. कम्पनी के रजिस्ट्रेशन के लिए निम्नलिखित प्रलेख रजिस्ट्रार के कार्यालय में भेजे जाते हैं-

1. कम्पनी के पार्षद सीमा नियम जिसमें कम्पनी का नाम, रजिस्टर्ड कार्यालय का स्थान, कम्पनी के उद्देश्य, कम्पनी की पूंजी एवं मध्यस्थ वाक्य का वर्णन किया गया है।

2. कम्पनी के पार्षद अन्तर्नियम जिनमें पार्षद सीमानियम में दिए गए उद्देश्यों की पूर्ति एवं कम्पनी के संचालन हेतु नियम दिए होते हैं।

3. संचालकों की लिखित सहमति जिसमें उन व्यक्तियों के नाम व पते लिखे जाते हैं जिन्होंने कम्पनी में प्रथम संचालक बनना स्वीकार किया है तथा उनके द्वारा लिए गए योग्यता अंशों का वर्णन भी किया जाना चाहिए। इस पर संचालकों के हस्ताक्षर होना जरूरी है।

4. वैधानिक घोषणा- एक ऐसी घोषणा कि कम्पनी के निर्माण से संबंधित सभी वैधानिक कार्यवाहियां पूरी कर ली गई हैं, निम्न व्यक्ति के द्वारा की जा सकती है- सुप्रीम कोर्ट या हाईकोर्ट का वकील, हाईकोर्ट का अटॉरनी, कोई चार्टड एकाउण्टेण्ट जो कम्पनी के निर्माण से सम्बन्ध रखता हो, या कम्पनी का संचालक, प्रबंधक या सचिव बनाया गया हो।

III. समामेलन का प्रमाण पत्र जारी करना:

कम्पनी के रजिस्ट्रेशन से संबंधित आवश्यक प्रलेख प्राप्त करने के बाद रजिस्ट्रार कम्पनी अधिनियम, 1956 की धारा 35 के अनुसार एक प्रमाणपत्र जारी करता है जिसे समामेलन का प्रमाणपत्र कहते हैं जो निम्न बातों का परिचायक है-

1. कम्पनी एक समामेलित संस्था बन गई है जिससे उसका अलग अस्तित्व आरंभ हो जाता है।

2. कम्पनी के पार्षद सीमानियम व अन्तर्नियम, कम्पनी अधिनियम के अधीन बनाए गए हैं।

3. समामेलन के बाद यदि इस बात का पता चलता है कि समामेलन से पहले इससे सम्बन्धित बहुत सी अनियमितताएं थी तो रजिस्ट्रेशन व्यर्थ नहीं हो जाता।

4. समामेलन के प्रमाणपत्र के निर्गमन के बाद किसी न्यायालय में कम्पनी के अस्तित्व के बारे में विवाद नहीं किया जा सकता।

5. सदस्यों द्वारा देय धन राशि कम्पनी के ऋण की भांति मानी जाती है।

6. कम्पनी समामेलन से पूर्व किए गए अनुबन्धों से कम्पनी को बाध्य नहीं किया जा सकता जब तक इस सम्बन्ध में नए अनुबंध नहीं किए जाते।

3.2.3 व्यापार प्रारंभ करने का प्रमाणपत्र (Certificate of Commencement of Business)

एक निजी कम्पनी समामेलन का प्रमाणपत्र मिलते ही अपना व्यापार प्रारंभ कर सकती है लेकिन एक सार्वजनिक कम्पनी को व्यापार प्रारंभ करने के लिए व्यापार प्रारंभ करने का प्रमाण पत्र अलग से देना पड़ता है। एक प्रविवरण नियमित करने वाली कम्पनी धारा 149 (1) में दी हुई कार्यवाही का पालन जब तक न कर ले तब तक व्यापार प्रारंभ नहीं कर सकती। जो इस प्रकार है-

1. कम से कम न्यूनतम अभिदान की राशि के बराबर अंशों का आबंटन करना।
2. संचालकों द्वारा अपने अंशों की राशि का भुगतान करना।
3. आवेदकों की बकाया राशि लौटाना।
4. संचालक या सचिव द्वारा यह घोषणा करना कि उपरलिखित कार्यवाहियां पूरी कर ली गई हैं।

एक अन्य सार्वजनिक कम्पनी को प्रविवरण जारी नहीं करती, उसे व्यापार प्रारंभ करने का प्रमाणपत्र प्राप्त करने के लिए निम्न कार्यवाही पूरी करनी पड़ती है-

1. स्थानापन्न प्रविवरण रजिस्ट्रार के पास भेजना।
2. संचालकों द्वारा अपने अंशों की राशि का भुगतान करना।
3. संचालकों या सचिव द्वारा यह घोषणा करना कि उपरलिखित कार्यवाही सम्पन्न कर ली है।

इस प्रकार जब रजिस्ट्रार के पास धारा 149 (1) या 149 (2) के अनुसार वैधानिक घोषणा फाइल कर दी जाती है तो वह कम्पनी को व्यापार प्रारंभ करने का प्रमाणपत्र जारी कर देता है जिसके बाद कम्पनी अपना व्यापार प्रारंभ कर सकती है। यदि कोई कम्पनी व्यापार प्रारंभ करने का प्रमाणपत्र मिलने के बाद एक वर्ष के अन्दर-अन्दर व्यापार प्रारंभ नहीं करती तो उसका अनिवार्य तौर पर समापन करने का आदेश न्यायालय द्वारा जारी किया जा सकता है।

3.3 संयुक्त पूंजी वाली कम्पनियों के प्रकार :

संयुक्त पूंजी वाली कम्पनियों का वर्गीकरण निम्न प्रकार से किया जा सकता है-

3.3.1 समामेलन के आधार पर:

(अ) समामेलित कम्पनी (ब) असमामेलित कम्पनी।

(अ) समामेलित कम्पनी :

ऐसी कम्पनी जो किसी विधान के अन्तर्गत पंजीकृत है उसे समामेलित कम्पनी कहते हैं। कम्पनियाँ निम्न प्रकार से समामेलित की जा सकती हैं-

1. **राज्य आज्ञा पत्र द्वारा (By Royal Charter) :** कम्पनी के समामेलन का यह प्राचीन स्वरूप है। जब किसी विशेष कार्य की आवश्यकता पड़ती है तो सरकार द्वारा राज्य आज्ञापत्र से कम्पनी का निर्माण किया जाता है। इस प्रकार की कम्पनी का कार्यक्षेत्र आज्ञापत्र द्वारा निर्धारित किया जाता है। भारत में ईस्ट इण्डिया कम्पनी तथा बैंक ऑफ इंग्लैण्ड इस प्रकार की कम्पनियों के उदाहरण रहे हैं। वर्तमान समय में इस प्रकार की कम्पनियों का कोई चलन नहीं है।

2. **संसद के विशेष अधिनियम द्वारा स्थापित कम्पनी :** राष्ट्रीय महत्व के कार्यों को सुचारू रूप से चलाने के लिए इस प्रकार की कम्पनियों की स्थापना की जाती है। ये कम्पनियां संसद या विधानसभा द्वारा विशेष अधिनियम बनाकर स्थापित की जाती है। इन्हें वैधानिक कम्पनी भी कहा जाता है। भारत में इसके उदाहरण स्टेट बैंक ऑफ इंडिया, रिजर्व बैंक, औद्योगिक वित्त कारपोरेशन तथा बहुत सी जन उपयोगी सेवाओं या संबंधित कम्पनियां जैसे रेलवे, गैस, बिजली एवं पानी से संबंधित है।

   ये कम्पनियाँ ऐसे कार्यों को करने के लिए स्थापित की जाती है जो राष्ट्रीय लाभ के हैं तथा जिन्हें निजी क्षेत्र में देने से राष्ट्र एवं जनता का अहित होने की संभावना है। इनके कार्यक्षेत्र की सीमाएं उस विशेष अधिनियम में दी होती हैं जो सरकार द्वारा इस उद्देश्य से पास किया जाता है।

3. **कम्पनी अधिनियम द्वारा :** ऐसी कम्पनी अधिनियम, 1956 या किसी पूर्व के अधिनियम द्वारा स्थापित की जाती है पूंजीकृत कम्पनी कहलाती है। कम्पनी अधिनियम, 1956 के लागू होने से पहले स्थापित कम्पनियों को 'विद्यमान कम्पनी' का नाम दिया जाता है। ये वे कम्पनी हैं जो कम्पनी अधिनियम 1866, से पूर्व के कम्पनी अधिनियम या कम्पनी अधिनियम 1866, दी भारतीय कम्पनी अधिनियम 1882, या भारतीय कम्पनी अधिनियम 1913, या हस्तांतरित कम्पनियों के पंजीकरण का अधिनियम 1942 वा इन अधिनियमों एवं आर्डिनेसों की समता को कोई कानून या दि पूर्तगीज कमर्शियल कोड के तहत् स्थापित हो गई हो।

   वर्तमान समय में जो भी कम्पनियां स्थापित की जाती हैं, उनकी स्थापना भारतीय कम्पनी अधिनियम, 1956 (अब कम्पनी अधिनियम, 2013) के तहत की जाती है। इस अधिनियम के तहत प्रत्येक कम्पनी का पंजीकरण कराना अनिवार्य है। बिना पंजीकरण के कम्पनी अस्तित्व में नहीं आती।

(ब) असमामेलित कम्पनी :

असमामेलित कम्पनी से आशय उस बड़ी सांझेदारी से है जिसमें सांझेदारी की संख्या सांझेदारी अधिनियम 1932 से निर्धारित संख्या से अधिक है। इस सांझेदारी की दशा में बैंकिंग व्यापार में 10 तथा साधारण व्यापार में 20 से अधिक सदस्य होने पर उसका पंजीकरण भारतीय कम्पनी अधिनियम 1956 के तहत् कराना अनिवार्य है। लेकिन यदि पंजीकरण नहीं कराया जाता तो इसे सांझेदारी फर्म न कहकर एक असमामेलित कम्पनी का नाम दिया जाता है। इस प्रकार की कम्पनियों का कानून की दृष्टि में कोई विद्यमानता नहीं होती।

3.3.2 दायित्व के आधार पर (On the Basis Liability) :

दायित्व के आधार पर भी कम्पनियां दो प्रकार की होती हैं-

अ) सीमित दायित्व वाली कम्पनी।

ब) असीमित दायित्व वाली कम्पनी।

अ) सीमित दायित्व वाली कम्पनी :

भारतीय कम्पनी अधिनियम 2013 के अनुसार सीमित दायित्व वाली कम्पनी से आशय ऐसी कम्पनी से है जिसमें दायित्व या तो अंशों द्वारा या गारण्टी द्वारा सीमित होती है।

(i) अंशों द्वारा सीमित दायित्व वाली कम्पनी :

ऐसी कम्पनी जिसमें प्रत्येक अंशधारी का दायित्व उसके द्वारा लिए गए अंशों के मूल्य तक सीमित होता है, उसे अंशों द्वारा दायित्व वाली कम्पनी कहते हैं।

भारतीय कम्पनी अधिनियम, 2013 के अनुसार ऐसी कम्पनी अपने पार्षद सीमानियम में अपने सदस्यों का दायित्व अंशों के मूल्य तक सीमित करती है। इस प्रकार की कम्पनी अपने अंशधारियों से आवश्यकता पड़ने पर केवल उतनी राशि की मांग कर सकती है जो उन अंशधारियों के अंशों पर बकाया है, उससे अधिक राशि देने के लिए अंशधारियों को जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता क्योंकि इस प्रकार की कम्पनियों में अंशधारियों को अपने जोखिम का पहले से ही ज्ञान होता है इसलिए ज्यादातर व्यक्ति इस प्रकार की कम्पनी के अंश खरीदने के इच्छुक होते हैं जिसकी वजह से इस प्रकार की कम्पनियों का प्रचलन आजकल सबसे ज्यादा है। अंशों द्वारा सीमित कम्पनी सार्वजनिक एवं निजी दोनों प्रकार की होती है।

(ii) गारण्टी द्वारा सीमित कम्पनियाँ :

भारतीय कम्पनी अधिनियम, 2013 के अनुसार इस प्रकार की कम्पनियों में प्रत्येक सदस्य का दायित्व उस रकम तक सीमित होता है जिसे कम्पनी के समापन होने की स्थिति में कम्पनी के कोष में जमा करने का वचन देते हैं। इस प्रकार की कम्पनियों के पार्षद सीमानियम (Memorandum of Association) में यह उल्लेख रहता है कि इस कम्पनी के सदस्य अपने ऊपर दायित्व लेते हैं कि यदि कम्पनी का समापन उनकी सदस्यता के दौरान अथवा उनकी सदस्यता छोड़ने की एक वर्ष की अवधि के अंदर होता है, तो कम्पनी की सम्पत्तियां उसके दायित्वों का पूर्ण भुगतान करने में अपर्याप्त होने की दशा में कम्पनी के सदस्य एक पूर्व-निश्चित राशि का भुगतान करने के लिए वचनबद्ध है। अतः यह रिजर्व पूंजी (Reserve Capital) के समान होती है।

ऐसी कम्पनियां अंशपूंजी वाली व बिना अंशपूंजी वाली दोनों प्रकार की हो सकती हैं। यदि ये अंशपूंजी वाली कम्पनी है तो इनके सदस्यों का दायित्व उनके अंशों पर न दी हुई राशि के लिए भी होता है।

बिना अंशपूंजी वाली कम्पनी जो गारण्टी द्वारा सीमित होती है ऐसे व्यक्तियों का संघ है जो समामेलन का लाभ तो उठाना चाहते हैं लेकिन अंश पूंजी अभिदान नहीं देना चाहते और भारी दायित्व के जोखिम से भी बचना चाहते हैं। इस प्रकार की कम्पनियों की स्थापना लाभ उपार्जन के लिए नहीं होती बल्कि धर्मार्थ एवं पुण्यार्थ कार्यों, कला एवं विज्ञान तथा खेलकूद आदि कार्यों के लिए की जाती है। ऐसी कम्पनी के सदस्यों का दायित्व केवल समापन पर ही उत्पन्न होता है। कम्पनी के समापन पर उसका दायित्व निम्न प्रकार से निर्धारित होता है-

1. उसकी सदस्यता समाप्त होने की तिथि से पहले या सदस्यता समाप्त होने में एक वर्ष के अंदर कम्पनी द्वारा निर्मित दायित्व तथा
2. कम्पनी की समापन लागत व अन्य खर्चे।

इस प्रकार सदस्य का दायित्व उसके द्वारा दी गई गारण्टी से अधिक नहीं हो सकता।

(ब) असीमित दायित्व वाली कम्पनी :

भारतीय कम्पनी अधिनियम 2013 के अनुसार असीमित दायित्व वाली कम्पनी से आशय ऐसी कम्पनी से है जिसमें सदस्यों का दायित्व असीमित होता है। ये कम्पनियां आमतौर से तब स्थापित की

जाती हैं जब अधिक दायित्व उत्पन्न होने की संभावना न हो और सदस्य समामेलन का लाभ उठाना चाहते हों। इस प्रकार की कम्पनियों में सदस्यों का दायित्व संयुक्त रूप से होता है, अलग-अलग नहीं। प्रत्येक सदस्य का दायित्व उसके हित के अनुपात में होता है। ये कम्पनियां बड़ी सांझेदारी संस्थाओं की तरह होती हैं जो अपने आप को कम्पनी अधिनियम के तरह रजिस्टर्ड कराती हैं। वे कम्पनियां भी अंशपूंजी वाली तथा बिना अंशपूंजी वाली दोनों प्रकार की होती हैं।

इस प्रकार की कम्पनियों को कुछ विशेष लाभ प्राप्त होता है जिनके लिए इनकी स्थापना की जाती है। यदि एक असीमित दायित्व वाली कम्पनी बिना अंशपूंजी की है तो इसके पार्षद सीमानियम एवं पार्षद अन्तर्नियम अवश्य होने चाहिए। अन्तर्नियमों में यह लिखा होना चाहिए। कि कम्पनी के कितने सदस्य होंगे और यदि कम्पनी में अंशपूंजी है तो वह कितनी होगी? एक असीमित दायित्व वाली कम्पनी अपने अंश स्वयं क्रय कर सकती है।

3.3.3 स्वामित्व के आधार पर :

स्वामित्व के आधार पर कम्पनी दो प्रकार की होती है-

अ) निजी कम्पनी :

भारतीय कम्पनी अधिनियम (परिवर्तित), 2015 की धारा 2(68) के अनुसार एक निजी कम्पनी से आशय एक ऐसी कम्पनी से है जो अपने पार्षद अन्तर्नियमों द्वारा तीन प्रतिबन्ध लगाती है-

1. अंशों के हस्तांतरण पर प्रतिबंध लगाना।
2. सदस्यों की संख्या 200 तक सीमित करना।
3. कम्पनी के अंशों एवं ऋणपत्रों में विनियोग हेतु सार्वजनिक आमंत्रण पर रोक लगाना।

इस प्रकार ये तीन प्रतिबन्ध जो कम्पनी लगाती है उसे निजी कम्पनी कहा जाएगा। लेकिन इन प्रतिबन्धों के बारे में कुछ स्पष्टीकरण दिया गया है जैसे- अंश हस्तांतरण पर प्रतिबन्ध तभी लगाया जा सकता है यदि कोई अंशपूंजी हो। यदि कम्पनी में अंशपूजी ही न हो तो अंश हस्तांतरण पर प्रतिबन्ध लगाना व्यर्थ है। दूसरे अंशों के हस्तांतरण पर प्रतिबन्ध पार्षद अन्तर्नियमों द्वारा लगाया जाता है इसलिए अन्तर्नियमों में अंश हस्तांतरण की सीमाएं दी जाती हैं कि यदि कोई अंशधारी अपने अंश बेचना चाहे तो सर्वप्रथम विद्यमान अंशधारियों को हस्तांतरित करे, किस मूल्य पर हस्तांतरित करे आदि।

इसी प्रकार सदस्यों की संख्या 200 तक सीमित करते समय उन सदस्यों को शामिल नहीं किया जा सकता जो कम्पनी के कर्मचारी हों या पहले कर्मचारी थे और अब सेवानिवृत्त होने के बाद भी सदस्य हैं। यह प्रतिबन्ध केवल अंशधारियों पर है, ऋणपत्रधारियों पर नहीं।

तीसरा प्रतिबन्ध जो एक निजी कम्पनी लगाती है, वह है- अपने अंशों एवं ऋणपत्रों के लिए जनता को आमंत्रित न करना, लेकिन कोई भी प्रस्ताव व निमंत्रण जनता को दिया हुआ नहीं माना जाएगा। यदि इसका आशय प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रस्ताव व निमंत्रण पाने वाले व्यक्तियों के अतिरिक्त अन्य व्यक्तियों के द्वारा अंशों एवं ऋणपत्रों के क्रय करने में नहीं है या वह एक प्रस्ताव देने वाले तथा पाने वाले का घरेलू मामला है।

ब) सार्वजनकि कम्पनी (Public Company) :

भारतीय कम्पनी अधिनियम (परिवर्तित), 2015 की धारा 2(71) के अनुसार, "एक पब्लिक कम्पनी से आशय ऐसी कम्पनी से है जो एक निजी कम्पनी नहीं है।"

इस प्रकार इस परिभाषा से यह स्पष्ट है कि यदि कोई कम्पनी निजी कम्पनी नहीं है तो उसे पब्लिक कम्पनी कहा जाएगा अर्थात् जो कम्पनी तीन प्रतिबन्ध नहीं लगाती, वह कम्पनी पब्लिक कम्पनी कहलाती है। अर्थात् जो अंश हस्तांतरण पर रोक न लगाती हो, जिनके सदस्यों की संख्या 200 तक सीमित न हो और जो अंशों एवं ऋणपत्रों के लिए जनता को आमत्रिंत करने पर रोक न लगाती हो। एक पब्लिक कम्पनी में कम से कम 7 (सात) सदस्य होने चाहिए।

3.3.4 अन्य कम्पनियाँ :

अ) विदेशी कम्पनी (Foreign Company) :

विदेशी कम्पनी से आशय ऐसी कम्पनी से है जिसका पंजीकरण किसी अन्य देश में हुआ हो लेकिन उसका व्यापार करने का स्थान भारत में भी हो। कम्पनी अधिनियम, 2013 की धाराएं 380 से लेकर 392 तक विदेशी कम्पनियों पर लागू होती हैं।

यदि किसी कम्पनी के 50% अंश किसी भारतीय नागरिक या भारतीय कम्पनी या भारतीय नागरिक एवं भारतीय कम्पनियों के पास संयुक्त रूप से हो तो ऐसी विदेशी कम्पनी को उन सभी प्रावधानों का पालन करना पड़ेगा जो भारत में एक समामेलित कम्पनी को करना पड़ता है। एक विदेशी कम्पनी को निम्नलिखित नियमों का पालन करना पड़ता है-

(i) मुख्य प्रपत्र-

1. एक विदेशी कम्पनी को निम्नलिखित प्रपत्र अपना व्यापार प्रारंभ करने के 30 दिन के अन्दर-अन्दर रजिस्ट्रार के पास पंजीकरण हेतु जमा कराने होते हैं।

   (i) कम्पनी के चार्टर, पार्षद सीमानियम एवं अन्तर्नियमों की प्रमाणित प्रतिलिपि।

   (ii) कम्पनी के पंजीकृत कार्यालय का पूरा पता।

   (iii) कम्पनी के संचालकों एवं सचिव की सूची।

   (iv) भारत में निवासी किसी व्यक्ति या व्यक्तियों के नाम व पते जो कम्पनी के नाम जारी की गई सूचनाओं को प्राप्त करने के लिए अधिकृत हैं।

   (v) भारत में मुख्य व्यापार स्थान का पूरा पता।

   इस ऊपरलिखित किसी भी नाम या पते में परिवर्तन होने पर उसकी सूचना निर्धारित समय के अंदर देना अनिवार्य है।

2. भारत में किए जाने वाले व्यापार के सम्बन्ध में वो सभी पुस्तकें रखना अनिवार्य है जो एक भारतीय कम्पनी के लिए हैं।

3. प्रत्येक विदेशी कम्पनी भारत में अपने कार्यालय या व्यापार स्थान के बाहर कम्पनी का पूरा नाम व उस देश का नाम लिखा जाएगा जहां कम्पनी का पंजीकरण हुआ है।

4. एक विदेशी कम्पनी के लिए प्रविवरण सम्बन्धी नियम वही हैं जो एक भारतीय कम्पनी के लिए हैं यदि कम्पनी अंश व ऋणपत्र जारी करती है तो उसे निम्न सूचनाएं प्रविवरण में देनी चाहिए।

   (i) कम्पनी का नाम अंग्रेजी में।

(ii) कम्पनी किस देश में समामेलित हुई है, उसका नाम।

(iii) क्या सदस्यों का दायित्व सीमित है?

(iv) कम्पनी का संविधान तथा रजिस्ट्रेशन की तारीख।

(v) रजिस्टर्ड कार्यालय का पूरा पता आदि।

प्रविवरण जारी करने से पहले इसकी एक प्रति रजिस्ट्रार के पास जमा करानी चाहिए।

5. भारत में व्यापार करने वाली कोई कम्पनी यदि अपना व्यापार बन्द कर देती है तो उसका समापन एक अपंजीकृत कम्पनी के समान किया जाता है। जिस देश में कम्पनी समामेलित हुई है यदि उसके कानून के अनुसार वह समाप्त कर दी जाती है तो भारत में उसका समापन समझा जाएगा।

(ब) सरकारी कम्पनी (Govt. Company)

कम्पनी अधिनियम 2013 की धारा 2 (45) के अनुसार सरकारी कम्पनी से आशय एक ऐसी कम्पनी से है जिसकी प्रदत्त पूंजी (Paid up Capital) का कम से कम 51% हिस्सा केन्द्र सरकार या राज्य सरकार या एक से अधिक राज्य सरकारों के पास या केन्द्र तथा राज्य सरकारों के पास है तो उसे सरकारी कम्पनी कहेंगे। इसके अलावा ऐसी कम्पनी जो किसी सरकारी कम्पनी की सहायक कम्पनी हो उसे भी सरकारी कम्पनी कहा जाएगा।

किसी सरकारी कम्पनी को राज्य का दर्जा नहीं दिया जा सकता लेकिन भारत के संविधान के आर्टिकल 12 के अन्तर्गत एक सरकारी कम्पनी राज्य की अभिकृति (Agency) है। Ramana Dayaram Shetti V International Airports Authority of India (1979) के मामले में सुप्रीम कोर्ट ने निर्णय दिया कि यदि कोई कम्पनी केन्द्रीय सरकार की अभिकृति (Agency) है या नहीं इसके लिए निम्नलिखित सूचकों का सामूहिक प्रभाव ध्यान में रहना चाहिए-

1. क्या कम्पनी की सारी पूंजी सरकार के स्वामित्व में है?
2. क्या कम्पनी पर सरकार का गहन नियंत्रण है?
3. क्या कम्पनी को राज्य सरकार का एकाधिकार अस्तित्व प्रदान किया गया है?
4. क्या कम्पनी के कार्य सार्वजनिक महत्व के हैं एवं सरकारी कार्यों से संबंधित है?

सरकारी कम्पनी के सम्बन्ध में मुख्य नियम निम्न प्रकार से हैं-

1. कोई सरकारी कम्पनी प्रबंध अभिकर्त्ता नियुक्त नहीं कर सकती।
2. सरकारी कम्पनी के अंकेक्षक की नियुक्ति व पुनर्नियुक्ति केन्द्रीय सरकार द्वारा कंट्रोलर एण्ड ऑडिटर जनरल ऑफ इण्डिया की सलाह से की जाएगी।
3. सरकार, प्रत्येक सरकारी कम्पनी की कार्याविधि के सम्बन्ध में हर वर्ष एक सामान्य रिपोर्ट, कम्पनी की सामान्य वार्षिक मीटिंग के 3 माह के अन्दर बनाकर इसे ऑडिट रिपोर्ट के साथ संसद के दोनों सदनों में पेश करेगी, अगर उसमें राज्य सरकार का भी हिस्सा है तो विधानसभा में भी पेश करेगी।
4. सरकारी कम्पनी के अंकेक्षण से संबंधित नियम निम्नलिखित कम्पनियों पर भी लागू होंगे-

   (i) केन्द्रीय सरकार और एक या अधिक सरकारी कम्पनियां।

(ii) कोई राज्य सरकार या केन्द्रीय सरकारी और एक या अधिक सरकारी कम्पनियां।

(iii) केन्द्रीय सरकार एक या अधिक राज्य सरकारों और एक या अधिक सरकारी कम्पनियां।

(iv) केन्द्रीय सरकार और एक या अधिक निगम जो कि केन्द्रीय सरकार द्वारा नियंत्रित हों या इसके स्वामित्व में हों।

(v) केन्द्रीय या राज्य सरकार द्वारा नियंत्रित या इसके स्वामित्व वाले एक या अधिक निगम।

(vi) एक से अधिक सरकारी कम्पनियां।

स) सूत्रधारी कम्पनी (Holding Company) :

भारतीय कम्पनी अधिनियम 2013 की धारा 2 (46) के अनुसार एक सूत्रधारी कम्पनी से आशय ऐसी कम्पनी से है जिसकी कई सहायक कम्पनियां हैं। इसलिए एक सूत्रधारी कम्पनी का अर्थ समझने के लिए सहायक कम्पनी का अर्थ समझना अनिवार्य है।

द) सहायक कम्पनी (Subsidiary Company) :

भारतीय कम्पनी अधिनियम 2013 की धारा 2(46) के अनुसार निम्नलिखित तीन दशाओं में एक कम्पनी दूसरी कम्पनी की सहायक कम्पनी कहलाती है यदि-

1. उसके संचालक मण्डल का गठन दूसरी कम्पनी द्वारा नियंत्रित है। इसका अभिप्राय यह है कि यदि किसी कम्पनी के सारे या आधे से ज्यादा संचालक मण्डल को लगाने या हटाने का अधिकार किसी दूसरी कम्पनी के हाथ में है तो जिस कम्पनी के पास यह अधिकार है, उसे नियंत्रक कम्पनी कहेंगे तथा दूसरी कम्पनी को सहायक कम्पनी कहेंगे।

2. किसी कम्पनी के आधे से ज्यादा साधारण अंश पूंजी यदि किसी दूसरी कम्पनी के पास है तो जिस कम्पनी के पास यह पूंजी है, उसे नियंत्रक कम्पनी तथा जिसकी पूंजी है उसे सहायक कम्पनी कहेंगे।

3. यदि कम्पनी किसी दूसरी कम्पनी की सहायक कम्पनी है और वह दूसरी कम्पनी किसी (तीसरी) अन्य कम्पनी की सहायक कम्पनी है तो पहली कम्पनी अन्य (तीसरी) कम्पनी की सहायक कम्पनी होगी। उदाहरण के तौर पर A Co., B.Co. की सहायक कम्पनी है तथा B.Co., C. Co. की सहायक कम्पनी है तो ऐसी दशा में A Co., C Co. की भी सहायक कम्पनी होगी।

य) बिना लाभ के संघ (Association Not for Profit) :

भारतीय कम्पनी अधिनियम 2013 की धारा 08 के अनुसार यदि किसी कम्पनी या संघ का निर्माण लाभ कमाने के उद्देश्य को छोड़कर किसी सामान्य उद्देश्य जैसे वाणिज्य, कला, विज्ञान, धर्मार्थ तथा अन्य उपयोगी उद्देश्यों को प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से किया जाता है तो केन्द्रीय सरकार ऐसे संघों की स्थापना के लिए लाइसेंस प्रदान कर सकती है और ऐसी कम्पनी को अपने नाम के पीछे 'लिमिटेड' या 'प्राइवेट लिमिटेड' शब्द लिखने की छूट भी प्रदान कर सकती है। यह कम्पनी अपने सदस्यों के लाभांश वितरित नहीं करती, बल्कि लाभ का प्रयोग ऊपरलिखित उद्देश्यों की पूर्ति हेतु किया जाता है। ऐसी कम्पनी के अधिकार एवं दायित्व सीमित कम्पनियों जैसे ही होते हैं। ऐसी कम्पनी बिना केन्द्रीय सरकार की पूर्व अनुमति के अपने पार्षद सीमानियमों में परिवर्तन नहीं कर सकती। केन्द्रीय सरकार किसी भी समय ऐसी कम्पनी के लाइसेंस को रद्द कर सकती है। ऐसी दशा में कम्पनी सभी विशेषाधिकारों एवं छूटों से वंचित हो जाती है।

3.4 निजी कम्पनी का सार्वजनिक कम्पनी में परिवर्तन :
(Conversion of Private Company into Public Company)

अ) एक निजी कम्पनी को निम्न प्रकार से सार्वजनिक कम्पनी के रूप में परिवर्तित किया जा सकता है-

1. कम्पनी के अन्तर्नियमों में परिवर्तन करने के लिए विशेष प्रस्ताव पास करना जिससे अन्तर्नियमों में दिए गए प्रतिबन्धों को हटाया जा सके।
2. परिवर्तन के 30 दिन के अन्दर-अन्दर रजिस्ट्रार के पास प्रविवरण या स्थानापन्न प्रविवरण फाइल करना अनिवार्य है।
3. सदस्यों की संख्या कम से कम सात तथा संचालकों की संख्या कम से कम तीन किए जाने अनिवार्य है।
4. परिवर्तन के 30 दिन के अन्दर-अन्दर विशेष प्रस्ताव की छपी हुई या टाइप कापी, प्रविवरण या स्थानापन्न प्रविवरण की कापी रजिस्ट्रार ऑफ कम्पनिज के पास पंजीकरण हेतु भेजना अनिवार्य है।
5. इस प्रकार रजिस्ट्रार द्वारा सभी प्रलेखों की जांच की जाएगी और यदि वह संतुष्ट है कि सभी प्रपत्र एवं प्रलेख ठीक है तो कम्पनी के लिए समामेलन का नया प्रमाणपत्र जारी करेगा जिसके बाद एक निजी कम्पनी सार्वजनिक कम्पनी कहलायेगी।

ब) कुछ विशेष परिस्थितियों में कम्पनी अधिनियम 1956 की धारा 43A के प्रावधान लागू होने पर एक निजी कम्पनी को सार्वजनिक कम्पनी मान लिया जाता है। इस कम्पनी को मानित सार्वजनिक कम्पनी Deemed Public Company कहा जाता है। निम्न दशाओं में एक निजी कम्पनी सार्वजनिक कम्पनी मानी जाएगी-

1. जब एक निजी कम्पनी अपने अन्तर्नियमों में अंशों के हस्तांतरण के अधिकार का प्रतिबन्ध, सदस्यों की अधिकतम सीमा एवं अंशों तथा ऋणपत्रों का जनता को निर्गमन का निषेध, का पालन नहीं करती तो ऐसी कम्पनी को सार्वजनिक कम्पनी मान लिया जाएगा।
2. यदि किसी निजी कम्पनी को प्रदत्त पूंजी का 25% व अधिक भाग किसी समामेलित संस्था या संस्थाओं के पास है तो जिस दिन से यह भाग समामेलित संस्थाओं के पास आया है, उस दिन से निजी कम्पनी एक सार्वजनिक कम्पनी मानी जाएगी। यह प्रतिशत निकालने के लिए एक निजी कम्पनी के बैंकिंग कम्पनी द्वारा लिए गए अंश प्रयोग नहीं किए जायेंगे यदि (i) अंश किसी प्रन्यास (Trust) की विषय सामग्री हो (ii) अंश किसी समामेलित संस्था के लाभ के लिए अलग न कर दिए हों (iii) अंश बैंकिंग कम्पनी द्वारा या तो प्रन्यासी (Trustee) की तरह या प्रन्यास के प्रन्यासी की ओर से अपने नाम में लिए गए हों। या (iv) यह अंश किसी मृतक की चल सम्पत्ति का भाग हो (v) मृत व्यक्ति ने किसी समामेलित संस्था की वसीयत न की हो (vi) मृत व्यक्ति के प्रबन्धक की तरह से हो।
3. यदि किसी निजी कम्पनी की औसत बिक्री गत तीन वर्षों में पांच करोड़ से कम नहीं है तो यह कम्पनी सार्वजनिक मानी जाएगी। इस प्रकार कम्पनी का कुल बिक्री की गणना करते समय कम्पनी द्वारा एक वित्तीय वर्ष में माल की पूर्ति या वितरण या सेवाओं के प्रदान करने से प्राप्त हुई राशि

से है। इस बिक्री में ग्राहक से प्राप्त सभी कर, लगान, पैकिंग एवं फारवर्डिंग खर्चे भी शामिल किए जायेंगे लेकिन यदि कर ग्राहक द्वारा सीधे सरकार को दिये जाते हैं तो उनको बिक्री में शामिल नहीं किया जायेगा।

4. यदि कोई निजी कम्पनी किसी सार्वजनिक कम्पनी की अंश पूंजी का 25% से ज्यादा हिस्सा खरीद लेती है तो वह निजी कम्पनी उस दिन से सार्वजनिक कम्पनी मानी जायेगी जिस दिन इसके पास सार्वजनिक कम्पनी की प्रदत्त पूंजी का 25% से ज्यादा हिस्सा आया है।

5. कम्पनी संशोधन अधिनियम 1988 के अनुसार 15-6-88 के बाद यदि कोई निजी कम्पनी जनता से निक्षेप स्वीकार करती है या पुराने निक्षेपों की नवीनीकरण करती है तो जिस दिन कम्पनी निक्षेप स्वीकार करती है या नवीनीकरण करती है, उस दिन से निजी कम्पनी एक सार्वजनिक कम्पनी मानी जायेगी।

इस प्रकार धारा 43(A) के अन्तर्गत एक निजी कम्पनी को सार्वजनिक कम्पनी माना जा सकता है। इस प्रकार मानी गई सार्वजनिक कम्पनी में एक निजी कम्पनी से संबंधित प्रतिबन्ध भी लागू कर सकते हैं जैसे प्रविवरण या स्थानापन्न प्रविवरण जारी न करना, अंशों के हस्तांतरण पर प्रतिबन्ध, कोरम के लिए 5 से कम व्यक्ति भी हो सकते हैं। इसके अतिरिक्त एक निजी कम्पनी जब सार्वजनिक कम्पनी मान ली जाती है तो उसे 90 दिन के अन्दर-अन्दर इस आशय की सूचना (3 महीने) रजिस्ट्रार के पास भेजनी चाहिए ताकि रजिस्ट्रार कम्पनी के समामेलन पत्र में आवश्यक संशोधन कर सके। इसके साथ-साथ एक मानी गई सार्वजनिक कम्पनी को धारा 161(2) में बताए गए ढंग से रजिस्ट्रार के पास वार्षिक रिटर्न भेजनी चाहिए तथा निम्न सूचनाएं भी भेजनी चाहिये-

1. उन कम्पनियों के नाम जिनके पास कम्पनी की अंश पूंजी है तथा कितनी-कितनी अंश पूंजी है।

2. निर्धारित वर्षों की वार्षिक बिक्री कितनी है।

3. आम जनता के विक्षेप स्वीकार किए हैं या नहीं।

4. यदि कम्पनी के पास किसी अन्य समामेलित कम्पनी की अंश पूंजी है।

3.5 सार्वजनिक कम्पनी का निजी कम्पनी में परिवर्तन

कम्पनी अधिनियम 1956 की किसी भी धारा में एक सार्वजनिक कम्पनी को निजी कम्पनी में बदलने की विधि पर अनुमति नहीं दी गई है और न ही ऐसा करने पर प्रतिबन्ध लगाया गया है लेकिन फिर भी एक अंश पूंजी वाली सार्वजनिक कम्पनी निम्नलिखित विधि से निजी कम्पनी में परिवर्तित की जा सकती है-

1. पार्षद अन्तर्नियमों में परिवर्तन :

एक सार्वजनिक कम्पनी को निजी कम्पनी में परिवर्तित करने के लिए सर्वप्रथम कम्पनी के संचालक मण्डल द्वारा यह निर्णय लिया जाएगा कि वह कम्पनी को निजी कम्पनी बनाना चाहते हैं तथा इसके लिए संशोधन का ड्राफ्ट तैयार करके आम सभा का दिन, समय व स्थान तय करके उसी दिन, समय व स्थान पर आम सभा की बैठक बुलानी होगी तथा आम सभा की बैठक में विशेष प्रस्ताव पास करके कम्पनी के पार्षद अन्तर्नियमों में परिवर्तन करना होगा जिससे सदस्यों की संख्या 200 तक सीमित करना, अंश हस्तांतरण पर प्रतिबंध तथा जनता को अंश व ऋणपत्र क्रय के आमंत्रण पर प्रतिबन्ध लगाना तथा कम्पनी के नाम के पीछे 'प्राइवेट लिमिटेड' शब्द जोड़ना शामिल किया जाएगा।

2. केन्द्रीय सरकार की अनुमति :

कम्पनी द्वारा अपने पार्षद सीमानियमों में परिवर्तन करने के लिए पास किए गए विशेष प्रस्ताव के 90 दिन के अन्दर-अन्दर केन्द्रीय सरकार से इस (3 माह) आशय की स्वीकृति प्राप्त करनी होगी कि एक सार्वजनिक कम्पनी को निजी कम्पनी में परिवर्तित किया जा रहा है। यदि केन्द्रीय सरकार इस आशय की स्वीकृति प्रदान नहीं करती तो एक सार्वजनिक कम्पनी को निजी कम्पनी में परिवर्तित नहीं किया जा सकता।

3. पंजीकरण :

केन्द्रीय सरकार से स्वीकृति प्राप्त करने के 30 दिन के अन्दर-अन्दर स्वीकृति की एक कापी तथा परिवर्तित अन्तर्नियमों की छपी हुई एक प्रतिलिपि रजिस्ट्रार के पास पंजीकरण हेतु भेजनी चाहिए ताकि आवश्यक परिवर्तन किया जा सके।

4. लेनदारों की स्वीकृति :

कम्पनी के असुरक्षित लेनदारों पर यदि कोई प्रभाव पड़ता है तो ऐसे प्रत्येक लेनदारों की स्वीकृति लेकर केन्द्र सरकार के पास अनुमति लेने के समय भेजनी चाहिए। ऐसा करने का अभिप्राय लेनदारों को परिवर्तन की पूर्व सूचना देने से है ताकि वो बाद में परिवर्तन का विरोध न कर सकें।

इस प्रकार ऊपरलिखित कार्यविधि करने के बाद एक सार्वजनिक कम्पनी को निजी कम्पनी में परिवर्तित किया जा सकता है।

4.0 निष्कर्ष

कम्पनी एक वैधानिक कृत्रिम व्यक्ति है, जिसका निर्माण कम्पनी अधिनियम के अधीन किसी विशेष उद्देश्य के लिए होता है और सदस्यों का दायित्व समान्यत: सीमित होता है, अस्तित्व सदस्यों से अलग होता है और इसके पास एक सार्व-मुद्रा होती है। एकाकी व्यापार एवं सांझेदारी संगठन के दोषों व दुर्बलताओं ने व्यावसायिक के नए प्रारूप को जन्म दिया जिसे कम्पनी के नाम से जाना जाता है। कम्पनियों का समामेलन, दायित्व, स्वामित्व एवं राष्ट्रीयता के आधार पर वर्गीकरण किया जा सकता है।

5.0 प्रस्तावित पुस्तकें

			Publisher
1.	Company Law	- Avtar Singh	Eastern Book Company
2.	Auditing	- Kamal Gupta	Tata McGraw Hill Education
3.	Company Law and Auditing	- Ashok Sharma	VK Global Publications
4.	Company Law and Auditing	- S.C. Aggarwal	R. Chand & Company

6.0 नमूने के लिए प्रश्न (Sample questions)

1. कम्पनी की परिभाषा दीजिए तथा इसकी विशेषताओं की व्याख्या कीजिए।

   (Define Company and explain its Characteristics.)

2. संक्षेप में बताएं कि कम्पनी अधिनियम के अन्तर्गत कितने प्रकार की कम्पनियों का निर्माण किया जा सकता है?

   (State in brief different types of companies which can be registered under the company act.)

3. निजी कम्पनी को सार्वजनिक कम्पनी में बदलने की पद्धति का वर्णन दीजिए।

   (Explain the procedure for converting a private company into a public company.)

4. प्रवर्तक को परिभाषित कीजिए? एक प्रवर्तक की कानूनी और विश्वसाक्षित स्थिति को स्पष्ट कीजिए।

   (Define promoter? Define the legal and fiduciary position of a promoter.)

5. एक सार्वजनिक कम्पनी के लिए उठाये जाने वाले कदमों का आवश्यक प्रलेखों सहित विवेचन कीजिए।

   (Describe the steps together with documents necessary for the incorporation of a public company.)

B.Com - II

Subject : Company Law & Auditing **Writer : Dr. Jagdish Gupta**

Lesson No : 2 **Updated By : Ashu K. Garg**

पार्षद सीमानियम-अर्थ, विषयवस्तु तथा परिवर्तन एवं पार्षद अन्तर्नियम

(Memorandum of Association-Meaning, Contents and Alteration and Articles of Association)

अध्याय की रूपरेखा (Structure of the Lesson)

1. भूमिका (Introduction)
2. अध्याय के उद्देश्य (Objectives of the Chapter)
3. विषय का प्रस्तुतीकरण (Presentation of Contents)
   - 3.1 पार्षद सीमानियम का अर्थ एवं परिभाषा
   - 3.2 पार्षद सीमानियम की विशेषताएं
   - 3.3 पार्षद सीमानियम का उद्देश्य एवं महत्व
   - 3.4 सीमानियम की विषयवस्तु
   - 3.5 सीमानियम में परिवर्तन
   - 3.6 पार्षद अन्तर्नियम का अर्थ एवं परिभाषा
   - 3.7 पार्षद अन्तर्नियम का उद्देश्य एवं महत्व
   - 3.8 अन्तर्नियमों के आवश्यक तत्व
   - 3.9 पार्षद अर्न्तर्नियमों की विषयवस्तु
   - 3.10 अन्तर्नियमों में परिवर्तन
   - 3.11 आंतरिक प्रबंध का सिद्धान्त
   - 3.12 अधिकार के परे का सिद्धान्त
   - 3.13 पार्षद सीमानियम व पार्षद अन्तर्नियम में अन्तर
4. साराँश (Summary)
5. प्रस्तावित पुस्तकें (Suggested Readings)
6. नमूने के लिये प्रश्न (Sample Questions)

1. भूमिका (Introduction)

पार्षद सीमानियम उन सभी आलेखों में से महत्वपूर्ण प्रलेख है जो कम्पनी द्वारा रजिस्ट्रार के पास कम्पनी के रजिस्ट्रेशन के लिए भेजे जाते हैं। इस प्रलेख को जीवन प्रदान करने वाला प्रलेख भी कहते हैं। यह कम्पनी का राजपत्र (Charter) भी कहलाता है। यह एक आधारभूत दस्तावेज (Fundamental document) होता है जिस पर कम्पनी रूपी भवन खड़ा होता है। कम्पनी इस दस्तावेज द्वारा उसके चारों ओर खींची गई लक्ष्मण रेखा का उल्लंघन नहीं कर सकती। कम्पनी के साथ व्यवहार करने वाले प्रत्येक व्यक्ति को कम्पनी के पार्षद सीमानियम में निहित बातों का पूर्ण ज्ञान होना चाहिए।

कम्पनी रजिस्ट्रार के पास दूसरा जो महत्वपूर्ण प्रलेख भेजा जाता है वह है पार्षद अन्तर्नियम। यह उन उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए तरीकों का उल्लेख करता है जो पार्षद सीमानियम में लिखे होते हैं। कम्पनी का पार्षद अन्तर्नियम कम्पनी के पार्षद सीमानियम के अधीन एवं इसका सहायक होता है। यह कभी भी पार्षद सीमानियम का उल्लंघन नहीं कर सकते।

2. अध्याय के उद्देश्य (Objectives of the Chapter)

इस पाठ को पढ़ने के पश्चात् आपको कम्पनी के पार्षद सीमानियम व पार्षद अन्तर्नियम से सम्बन्धित निम्न जानकारी प्राप्त होगी:

पार्षद सीमानियम व पार्षद अन्तर्नियम का अर्थ एवं परिभाषाएँ

इन प्रलेखों को तैयार करने उद्देश्य एवं महत्व

इन दोनों प्रलेखों की विषयवस्तु व इनमें परिवर्तन के बारे में ज्ञान

आंतरिक प्रबन्ध व अधिकार के परे का सिद्धान्त

पार्षद सीमानियम व पार्षद अन्तर्नियम में अन्तर इत्यादि।

3. विषय का प्रस्तुतीकरण (Presentation of Contents)

इस अध्याय में पार्षद सीमानियम व पार्षद अन्तर्नियम जैसे महत्वपूर्ण प्रलेखों के बारे में महत्वपूर्ण जानकारी निम्न प्रकार प्रस्तुत की गई है:

3.1 पार्षद सीमानियम का अर्थ एवं परिभाषा
(Meaning and Definition of Memorandum of Association)

पार्षद सीमानियम वह प्रलेख है जिसमें उन महत्वपूर्ण शर्तों का उल्लेख किया जाता है जिनके आधार पर कम्पनी के समामेलन की आज्ञा दी जाती है। इसके अभाव में कम्पनी का समामेलन रजिस्ट्रेशन नहीं हो सकता। इस प्रलेख में कम्पनी के अधिकार व उद्देश्य परिभाषित होते हैं। पार्षद सीमानियम की कुछ परिभाषाएँ इस प्रकार हैं:-

कम्पनी अधिनियम, 2013 की धारा 2(56) के अनुसार, "पार्षद सीमानियम का आशय ऐसे पार्षद सीमानियम से है जो पिछले किसी भी अधिनियम या वर्तमान कम्पनी के अन्तर्गत मूल रूप से बनाया गया है या समय-समय पर परिवर्तित किया गया है।"

लार्ड केअर्न्स के अनुसार, "किसी कम्पनी का पार्षद सीमानियम उसका चार्टर है और वह अधिनियम कम्पनी के अधिकारों की सीमाओं को परिभाषित करता है।"

उपरोक्त परिभाषाओं से हमें यह स्पष्ट हो जाता है कि सीमानियम कम्पनी का चार्टर होता है जिसके बिना एक कम्पनी की स्थापना नहीं की जा सकती। यह एक ऐसा प्रलेख है जो कम्पनी एवं बाहरी व्यक्तियों में सम्बन्धों की जानकारी देता है।

3.2 पार्षद सीमानियम की विशेषताएँ (Characteristics of Memorandum of Association)

पार्षद सीमानियम की कुछ मुख्य विशेषताएँ इस प्रकार हैं:–

(i) यह कम्पनी का चार्टर (Charter) होता है।

(ii) इसमें वो सभी शर्तें दी होती हैं जिनके आधार पर कम्पनी का समामेलन होता है।

(iii) यह कम्पनी के अधिकार क्षेत्र को निर्धारित करता है।

(iv) यह कम्पनी तथा बाहरी व्यक्तियों के बीच सम्बन्धों व कार्यों की सीमा निर्धारित करता है।

(v) यह एक सार्वजनिक प्रलेख है तथा कम्पनी से व्यवहार करने वाले प्रत्येक व्यक्ति को इसकी जानकारी मान ली जाती है।

3.3 पार्षद सीमानियम का उद्देश्य एवं महत्व (Objective & Importance of Momorandum of Association)

पार्षद सीमानियम का मुख्य उद्देश्य अंशधारियों, ऋणदाताओं तथा अन्य व्यक्तियों को जो कम्पनी से व्यवहार करते हैं यह बताना है कि कम्पनी का कार्यक्षेत्र क्या है। इसके अतिरिक्त निम्नलिखित कारणों से भी कम्पनी के जीवन में इस प्रलेख का बहुत महत्व है:

1. यह कम्पनी का आधारभूत एवं अनिवार्य प्रलेख है क्योंकि इसके बिना कम्पनी का समामेलन नहीं हो सकता।

2. यह कम्पनी की कारोबार तथा कार्यक्षेत्र की सीमा निर्धारित करता है। यह कम्पनी के उद्देश्यों को परिभाषित कर उसके अधिकारों की सीमाएं निश्चित करता है।

3. कम्पनी के साथ व्यवहार करने वाले बाहरी व्यक्तियों के लिए यह मार्गदर्शक का काम करता है। इससे ही उन्हें कम्पनी की शक्तियां, अनुबन्ध करने का अधिकार, उद्देश्यों एवं कार्यक्षेत्र आदि का पता लगता है।

4. इस प्रलेख में कम्पनी का नाम, रजिस्ट्रर्ड कार्यालय का पता, अंश-पूंजी, कम्पनी के कार्यक्षेत्र एवं अधिकारों की सीमाओं का उल्लेख होता है जिससे कम्पनी के स्वरूप तथा प्रकृति का पता चलता है।

3.4 सीमानियम की विषयवस्तु (Contents of Memorandum of Association)

निजी तथा सार्वजनिक कम्पनी के सीमानियम में निम्नलिखित वाक्यों को शामिल किया जाएगा–

1. कम्पनी का नाम (Name Clause) :

अर्थात् कम्पनी का नाम क्या होगा? सार्वजनिक कम्पनी के नाम के अन्त में सीमित (Limited) तथा निजी कम्पनी के अन्त में 'निजी सीमित' (Private Limited) शब्द भी जोड़े जाने चाहिए। भारतीय कम्पनी अधिनियम, 2013 की धारा, 8 के अनुसार, कोई भी कम्पनी जिसकी स्थापना व्यापार, विज्ञान,

कला, धर्म, दान, संस्कृति आदि के प्रोत्साहन के उद्देश्य से की गई है, और वह अपने लाभों (यदि कोई होंगे) को या अन्य आय को इन्हीं उद्देश्यों की प्राप्ति में लगाने की इच्छुक है तथा अपने सदस्यों में किसी प्रकार के लाभांश के भुगतान पर प्रतिबन्ध लगाती है, तो केन्द्रीय सरकार एक अनुज्ञापन (Licence) द्वारा उन्हें 'लिमिटेड' या प्राईवेट लिमिटेड शब्द को अपने अंत में लिखने से छूट दे सकती है।

केन्द्र सरकार ऐसा लाइसेंस देते समय ऐसी शर्तें व नियम लगा सकती है जिन्हें वह उचित समझे। सरकार अधिनियम की अन्य व्यवस्थाओं से भी मुक्त कर सकती है। केन्द्रीय सरकार किसी भी समय 'लिमिटेड' शब्द न प्रयोग करने वाली आज्ञा को वापिस ले सकती है। कम्पनी का नाम किसी अन्य कम्पनी के नाम से मिलता-जुलता नहीं होना चाहिए। कम्पनी के नाम से संबधित कुछ प्रावधान कम्पनी अधिनियम में दिए हैं जो निम्नलिखित हैं:

अवांछनीय नाम से बचना (Undesirable name to be avoided)

कम्पनी का नाम ऐसा नहीं होना चाहिए जो पहले से व्यापार कर रही कम्पनी के नाम से मिलता-जुलता हो। कम्पनी का पंजीकरण किसी ऐसे नाम से नहीं किया जा सकता, जो केन्द्र सरकार के मत में अवांछनीय है (धारा 20) निम्न स्थितियों में नाम अवांछनीय समझा जाएगा।

1. यदि वह किसी प्रसिद्ध वर्तमान कम्पनी के अंग्रेजी नाम का हिन्दी अनुवाद है।
2. यदि वह (नाम) किसी राष्ट्र पुरुष की भागीदारी या सम्बन्ध को दर्शाता है।
3. यदि वह किसी वर्तमान कम्पनी के नाम को बोलने में एक समान लगता है जैसे R.B. Industries Ltd. के स्थान पर AAR. BEE. Industries Ltd.
4. यदि वह किसी वर्तमान कम्पनी के नाम में न्यू, मॉडर्न, नव आदि शब्द जोड़कर अलग नाम बनाया गया है जैसे न्यू रिलैक्सो, न्यू बाटा शू कम्पनी।

नीचे पहले कॉलम में दिये गये प्रस्तावित नामों को दूसरे कॉलम में निर्दिष्ट नामों से मिलता-जुलता माना जाएगा-

	प्रस्तावित नाम	**वर्तमान कम्पनी के नाम**
1.	ट्रेड कॉपोरेशन ऑफ इण्डिया लि.	स्टेट ट्रेडिंग कॉपोरेशन ऑफ इण्डिया लि.
2.	रूबी इंजीनियरिंग लि.	रूबी इंजीनियरिंग कॉपेरेशन लि.
3.	इण्डिया लैण्ड एण्ड फाइनैन्स लि.	नार्दन इण्डिया लैण्ड एण्ड फाइनैन्स लि.
4.	लक्ष्मी फाइनैन्स लि.	न्यू लक्ष्मी फाइनैन्स लि.

मिलता-जुलता नाम रखने की स्थिति में निषेधाज्ञा (Injunction if identical name adopted):

यदि कोई कम्पनी किसी ऐसे नाम से पंजीकरण कराती है, जो पहले से काम कर रही किसी कम्पनी के नाम से मिलता-जुलता है, तो पहले से काम कर रही कम्पनी इस नई कम्पनी के विरुद्ध न्यायालय से निषेधाज्ञा प्राप्त कर सकती है। इसका कारण यह है कि कम्पनी का नाम उसकी व्यापार की ख्याति का ही एक भाग है। कम्पनी अधिनियम के अन्तर्गत एक कम्पनी अपने नाम का पंजीकरण कराके उन नाम के प्रयोग पर एकाधिकार (Monopoly) प्राप्त कर लेती है।

कई नामों के उपयोग पर रोक (Prohibition of use of certain names):

The Emblems and Names (Prevention of improper Use) Act, 1950 के अनुसार सरकार में निम्नलिखित नियमों या चिन्हों को व्यापारिक चिन्हों या पेटेन्टों में उपयोग पर रोक लगाई है-

1. संयुक्त राष्ट्र संघ (U.N.O) तथा विश्व स्वास्थ्य संगठन (W.H.O) के नाम चिन्ह।
2. भारतीय राष्ट्रीय ध्वज।
3. केन्द्र तथा राज्य सरकारों की राजकीय मुद्रा या चिन्ह।

यदि कोई कम्पनी निम्नलिखित शब्दों में से किसी भी शब्द को अपने नाम में शामिल करती है, तो ऐसी कम्पनी की न्यूनतम अधिकृत शेयर पूँजी इन शब्दों के सम्मुख निर्दिष्ट राशि के बराबर होनी चाहिए-

	मुख्य शब्द	आवश्यक अधिकृत पूँजी
(i)	कॉपोरेशन	5 करोड़
(ii)	इण्टरनेशनल, ग्लोब, यूनिवर्सल, कांटीनेण्टल, इण्टर-काण्टीनेण्टल, एशिया शब्दों से कम्पनी का आरंभ होता है।	1 करोड़
(iii)	यदि (ii) में वर्णित शब्द नाम के मध्य में प्रयोग होता हो।	50 लाख
(iv)	हिन्दुस्तान, इण्डिया, भारत से कम्पनी का नाम आरंभ होता हो।	50 लाख
	यदि (iv) में वर्णित शब्द नाम के मध्य में प्रयोग होते हैं।	5 लाख

कम्पनी के नाम का स्पष्ट रूप से प्रदर्शन (Publication of Company's Name)

प्रत्येक कम्पनी द्वारा

1. अपना नाम एवं अपने पंजीकृत कार्यालय का पता साफ अक्षरों में पेंट कराके व्यापार के प्रत्येक स्थान पर स्पष्ट रूप से प्रदर्शित करना चाहिए।
2. अपनी निगम मुद्रा पर अपना नाम स्पष्ट अक्षरों में अंकित कराना चाहिए।
3. सभी व्यापारिक पत्रों, बीजकों, तथा अधिकृत प्रकाशों, विनिमय पत्रों के ऊपर नाम एवं पंजीकृत कार्यालय का पता स्पष्ट अक्षरों में छपाना चाहिए।

उपर्युक्त प्रकार से नाम न लिखने, या उसे प्रदर्शित न करने पर कम्पनी तथा उसके प्रत्येक दोषी अधिकारियों पर चूक के प्रत्येक दिन के लिए 50 रुपये तक जुर्माना किया जा सकता है।

कम्पनी अधिनियम, 2013 की धारा 12(3) में प्रावधान है कि एक व्यक्ति वाली कम्पनी की दशा में ऐसी कम्पनी के नाम के नीचे ब्रेकिट में एक व्यक्ति वाली कम्पनी शब्दों का उल्लेख अवश्य होना चाहिए, जहाँ कहीं भी कम्पनी के नाम का प्रयोग किया जाता है।

2. पंजीकृत कार्यालय वाक्य (The Registered Office Clause):

व्यापार आरंभ करने अथवा समामेलन के 30 दिन बाद (दोनों में जो भी पहले हो), प्रत्येक कम्पनी का एक पंजीकृत कार्यालय होना चाहिए। पंजीकृत कार्यालय के स्थान सम्बन्धी सूचना पंजीयक के कार्यालय में 30 दिन के भीतर भेजी जानी चाहिए। पंजीकृत कार्यालय के स्थान से कम्पनी के निवास स्थान का निर्णय किया जाता है। कम्पनी के नाम से भेजे जाने वाले सभी दस्तावेज इस स्थान पर भेजे जाने चाहिए।

3. उद्देश्य वाक्य (The Objects Clause):

सीमानियम में कम्पनी के उद्दश्यों का स्पष्ट वर्णन किया जाना चाहिए। कम्पनी केवल वे ही कार्य

कर सकती है जो वर्णित उद्देश्यों के अन्तर्गत अथवा उससे संबद्ध हैं। सीमानियम में कम्पनी के उद्देश्यों को निर्दिष्ट कर देने से दो प्रयोजन पूरे होते हैं। सबसे पहले, इससे कम्पनी के शेयरधारियों को संरक्षण मिलता है, क्योंकि रुपया लगाने से पहले उन्हें इस बात की पूर्ण जानकारी हो जाती है कि उनका रुपया किन उद्देश्यों की पूर्ति हेतु प्रयुक्त किया जाएगा। दूसरे इनसे कम्पनी से व्यवहार करने वाले बाहरी व्यक्तियों को भी संरक्षण मिलता है, क्योंकि उन्हें कम्पनी के अधिकारियों की अधिकार सीमा के सम्बन्ध में जानकारी मिल जाती है। सीमानियम में उद्देश्यों का जितना संक्षिप्त विवरण होगा, शेयरधारियों का जोखिम उतना ही कम होगा। उद्देश्यों का विवरण जितना व्यापक हो कम्पनी से व्यवहार करने वाले बाहरी व्यक्तियों को उतना ही अधिक संरक्षण मिलेगा। यह कम्पनी के प्रबंधकों एवं लेनदारों के हित में होगा कि सीमानियम का उद्देश्य अधिकाधिक व्यापक हो। इससे उनके द्वारा कोई भी कार्य व्यवहार कम्पनी के लिए शक्तिबाह्य (Ultra Vires) नहीं ठहराया जा सकता।

सहायक कार्य (Incidental Acts) :

कम्पनी के अधिकार स्पष्ट या गर्भित (Implied) हो सकते हैं। स्पष्ट अधिकार कम्पनी के सीमानियम में स्पष्ट रूप से निर्दिष्ट किये जाते हैं। इसके अलावा कम्पनी को कुछ ऐसे कार्य करने का अधिकार भी होता है जो उसके स्पष्ट अधिकारों से संबद्ध या उनके सहायक हों।

किन्तु सीमानियम में निर्दिष्ट अधिकारों का यथावत् अर्थ नहीं लगाया जाना चाहिए। कम्पनी को वे सब कार्य करने का अधिकार है जो सीमानियम में निर्दिष्ट स्पष्ट अधिकारों से संबद्ध है।

इस बात को समझने के लिए मामले का हवाला दिया जा सकता है:

Foster V. Sondon, Chatham D Douer Rail Co. (1895) R. B. 711.

कम्पनी ने रेलमार्ग के लिए कुछ जमीन खरीदी। रेलमार्ग महराबों पर बनाया गया। कम्पनी ने उन महराबों को वर्कशाप में बनाने के लिए किराए पर दे दिया। वर्कशॉप से होने वाले शोर एवं कचरे के कारण पड़ोसियों ने आपत्ति की और कहा कि कम्पनी का यह कार्य शक्तिबाह्य (Ultra Vires) है। न्यायालय की राय में मेहराबों को वर्कशॉप के लिए किराए पर देना उसके अधिकारों से संबद्ध था और इसलिए पूर्णतया कानूनी था।

4. पूँजी वाक्य (The Capital Clause) :

शेयर पूंजी वाली कम्पनी के सीमानियम के पूंजी वाक्य में वह राशि दी जानी चाहिए जिससे पंजीकृत की गई है, तथा इस राशि को निश्चित राशि वाले कितने शेयरों में विभाजित किया गया है। कम्पनी जितनी पूँजी से पंजीकृत की जाती है, उसे पंजीकृत (Registered), या नाममात्र (Nominal) पूँजी कहते हैं। कम्पनी किसी एक समय पर सीमानियम में दी गई संख्या से अधिक शेयर नहीं जारी कर सकती। कम्पनी केवल साधारण (Equity) तथा पूर्वाधिकार (Preference) शेयर जारी कर सकती है। इन शेयरों के अधिकारों को (धाराएं 85 तथा 89) में वर्णित किया गया है।

5. दायित्व वाक्य (The Liability Clause) :

शेयरों अथवा गारण्टी से सीमित कम्पनी के सीमानियम में यह भी दर्शाया जाना चाहिए कि उसके सदस्यों का दायित्व सीमित है। (धारा 13 (2)। एक कम्पनी जिसे कम्पनी अधिनियम, 2013 की धारा 08 के अन्तर्गत 'लिमिटेड' शब्द का प्रयोग करने से छूट प्राप्त है, उसे भी अपने सीमा नियय में यह उल्लेख करना पड़ता है कि सदस्यों का दायित्व सीमित है। इसका अर्थ है कि सदस्यों को भी किसी भी समय प्रत्येक शेयर-पर केवल अदत्त (Unpaid) अथवा अयाचित (Uncalled) राशि चुकाने के लिए ही बाध्य किया जा सकता है। यदि कम्पनी गारण्टी द्वारा सीमित है, तो उसके सदस्यों को प्रत्येक द्वारा

गारण्टी की गई अधिकतम राशि चुकाने के लिए बाध्य किया जा सकता है। उदाहरणार्थ, A के पास एक कम्पनी के 100 रुपये अंकित मूल्य के दस शेयर हैं। उसने प्रति शेयर 85 रुपये की अदायगी कर दी है अब उसका शेष दायित्व 15 रु प्रति शेयर है। कम्पनी को यह बकाया राशि चुकाते ही वह पूर्णतया दायित्व मुक्त हो जायेगा।

किन्तु इस नियम का एक अपवाद है। यदि किसी समय कम्पनी के सदस्यों की संख्या वैधानिक संख्या से कम हो जाती है तथा इस प्रकार घटी हुई सदस्य संख्या होते हुए ही कम्पनी 6 माह से अधिक समय तक व्यापार चलाती रहती है तो इस अवधि के बाद के सारे ऋणों के लिए वे व्यक्ति अलग-अलग उत्तरदायी होंगे, जो उपर्युक्त 6 माह की अवधि के बीतने के बाद भी कम्पनी के सदस्य बने रहते हैं। इन ऋणों की वसूली के लिए कथित सदस्यों पर अलग-अलग दावा किया जा सकता है। (धारा 45)।

6. संगठन वाक्य (The Association Clause) :

संगठन वाक्य में अभिदाताओं की निम्नलिखित घोषणा रहती है:

"हम कई व्यक्ति, जिनके नाम व पते निर्दिष्ट हैं, इस सीमानियम के अनुसार एक कम्पनी के रूप में समामेलित होने के इच्छुक हैं, तथा कम्पनी की पूंजी में अपने नामों के आगे दर्शाये शेयर लेना स्वीकार करते हैं।"

इसके पश्चात् अभिदाताओं के नाम, पते, तथा उनमें से प्रत्येक द्वारा लिये गये शेयरों का विवरण होता है। प्रत्येक अभिदाता को कम से कम एक शेयर अवश्य लेना चाहिए।

सार्वजनिक कम्पनी की स्थिति में सीमानियम पर कम से कम 7 व्यक्तियों तथा निजी कम्पनी की स्थिति में कम से कम 2 व्यक्तियों के हस्ताक्षर होने आवश्यक हैं। प्रत्येक अभिदाता के हस्ताक्षर एक गवाह द्वारा प्रमाणित किये जाने चाहिए। गवाह अभिदाताओं में से कोई व्यक्ति नहीं हो सकता।

3.5 सीमानियम में परिवर्तन (Alteration in Memorandum of Association)

परिवर्तन हेतु सीमानियम को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है-

1. **शर्तें (Conditions) :** जो प्रावधान सीमानियम में शामिल करना अनिवार्य है (अर्थात् नाम, उद्देश्य, पंजीकृत कार्यालय का स्थान, सदस्यों का सीमित दायित्व, शेयरपूंजी) उन्हें शर्तें कहते हैं। कुछ अपवादात्मक स्थितियों में कम्पनी अधिनियम के तत्संबंधी विशेष प्रावधानों के अनुसार ही इन्हें निर्धारित प्रकार से तथा निर्धारित सीमा तक परिवर्तित किया जा सकता है।

2. **अन्य प्रावधान (Other Provisions) :** जब तक कम्पनी अधिनियम में इसके विपरीत कुछ न कहा गया हो, अन्तर्नियमों के समान इन प्रावधानों (जिनमें प्रबन्ध संचालक तथा प्रबंधक आदि की नियुक्ति शामिल है) को भी एक विशेष प्रस्ताव द्वारा परिवर्तित किया जा सकता है।

शर्तों में परिवर्तन (Alteration in Conditions)

1. नाम में परिवर्तन (Change of Name) :

कोई भी कम्पनी एक विशेष प्रस्ताव द्वारा केन्द्र सरकार की लिखित अनुमति से अपना नाम बदल सकती है। केन्द्र सरकार ने अधिसूचना जारी करके, 1 जुलाई 1985 से कम्पनी के नाम में परिवर्तन की अनुमति देने का अधिकार रजिस्ट्रार को सौंप दिया है। किन्तु नाम परिवर्तन के अनुसार यदि नाम से केवल 'निजी' (Private) हटाने या उसे जोड़ने का प्रश्न है (अर्थात् जब निजी कम्पनी को सार्वजनिक

कम्पनी तथा सार्वजनिक कम्पनी को निजी कम्पनी बनाया जाता है) तो केन्द्र सरकार की अनुमति की आवश्यकता नहीं होती।

साधारण प्रस्ताव द्वारा (By Ordinary Resolution) :

यदि भूल से अथवा अन्य किसी कारण से कोई कम्पनी एक ऐसे नाम से पंजीकृत कर दी जाती है, जो केन्द्र सरकार के मत में पहले से कार्य कर रही किसी कम्पनी के नाम जैसा, अथवा उसी से मिलता–जुलता है, तो इस प्रकार पंजीकृत कम्पनी साधारण प्रस्ताव द्वारा तथा केन्द्र सरकार की लिखित अनुमति द्वारा अपना नाम बदल सकती है।

किन्तु कम्पनी के लिए यह आवश्यक बन जाता है कि यदि केन्द्र सरकार तत्संबंधी निर्देश दे दें तो यह अपने प्रथम पंजीकरण या नए नाम से पंजीकरण की तिथि से 12 महीने के भीतर अपना नाम बदल लें। केन्द्र सरकार द्वारा दिए जाने की स्थिति में यह भी आवश्यक है कि निर्देश की तिथि से 3 माह के भीतर एक साधारण प्रस्ताव द्वारा तथा केन्द्र सरकार की लिखित अनुमति से कम्पनी के नाम या नए नाम में परिवर्तन कर लिया जाए। यदि कम्पनी केन्द्र सरकार के निर्देश के पालन में कोई चूक करती है तो कम्पनी तथा उसके प्रत्येक दोषी अधिकारी पर चूक के प्रत्येक दिन के लिए 100 रु तक जुर्माना किया जा सकता है।

समामेलन का नया प्रमाण-पत्र (Fresh Certificate of Incorporation) :

कम्पनी द्वारा नाम परिवर्तित करने पर पंजीयक को अपने रजिस्टर में कम्पनी के पुराने नाम के स्थान पर नया नाम लिखना चाहिये तथा इस परिवर्तन के साथ कम्पनी को समामेलन का नया प्रमाणपत्र जारी करना चाहिए।

अधिकारों एवं दायित्वों में कोई परिवर्तन नहीं (Rights and obligations remain unaffected)

नाम परिवर्तन से कम्पनी के अधिकारों एवं दायित्वों में कोई परिवर्तन नहीं होता। परिवर्तन केवल कम्पनी के नाम में होता है, उसकी पहचान में नहीं।

2. पंजीकृत कार्यालय में परिवर्तन (Change in Registered Office):

पंजीकृत कार्यालय को एक राज्य से दूसरे राज्य में ले जाना कठिन कार्य है। इसके लिए अधिनियम की धारा 146 के प्रावधानों का पालन करना पड़ता है। पंजीकृत कार्यालय में परिवर्तन तीन ढ़ंग से हो सकता है:

1. एक शहर में एक स्थान से दूसरे स्थान पर स्थानान्तरण।
2. एक ही राज्य में एक शहर से दूसरे शहर में स्थानान्तरण।
3. एक राज्य से दूसरे राज्य में स्थानान्तरण।

1. एक ही शहर में एक स्थान से दूसरे स्थान पर स्थानान्तरण (If office is to be shifted from one place to another within the city) :

एक कम्पनी अपने रजिटर्ड कार्यालय को एक ही शहर में एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जा सकती है। ऐसे परिवर्तन पर कोई प्रतिबन्ध नहीं है और न ही कोई कठिनाई होती है। इसके लिए संचालक मण्डल के साधारण प्रस्ताव की आवश्यकता होती है। ऐसे परिवर्तन की सूचना रजिस्ट्रार को परिवर्तन के 30 दिन के अन्दर भेज देनी चाहिए।

2. एक ही राज्य में एक शहर से दूसरे शहर में स्थानान्तरण
(If Office is to be shifted from one city to another within the state):-

यदि कम्पनी अपने रजिस्ट्रर्ड कार्यालय को एक ही राज्य में शहर से दूसरे शहर में ले जाना चाहती है तो ऐसा करने के लिए निम्न विधि अपनानी पड़ती हैं:

1. कम्पनी को एक विशेष प्रस्ताव पास करना पड़ेगा।
2. विशेष प्रस्ताव पास करने के 30 दिन के अन्दर वास्तविक स्थान पर परिवर्तन कर लेना चाहिए।
3. विशेष प्रस्ताव की छपी हुई प्रति रजिस्ट्रार के पास भेज देनी चाहिए।
4. स्थान–परिवर्तन के 30 दिन के अन्दर नए स्थान की सूचना रजिस्ट्रार के पास भेज देनी चाहिए।

3. एक राज्य से दूसरे राज्य में स्थानातान्तरण
(If office is to be shifted from one state to another state)

कम्पनी के रजिस्ट्र्ड कार्यालय को एक राज्य से दूसरे राज्य में ले जाने का कार्य जटिल है और इसमें स्वयं पार्षद सीमानियम में परिवर्तन करने की आवश्यकता होती है। ऐसा परिवर्तन निम्न प्रकार से किसी भी उद्देश्य की पूर्ति के लिए किया जा सकता है।

1. व्यापार को अधिक कार्यक्षमता अथवा मितव्यता से चलाने के लिए।
2. नए व उन्नत साधनों से कम्पनी के मूल उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए।
3. व्यापार के स्थानीय क्षेत्र को विस्तृत करने या बदलने के लिए।
4. किसी ऐसे व्यापार को चलाने के लिए जो वर्तमान परिस्थितियों में कम्पनी के व्यापार में सुविधा या लाभ की दृष्टि से सहायक हो सकता है।
5. पार्षद सीमानियम में निर्दिष्ट किसी उद्देश्य को प्रतिबंधित करने या उसके परित्याग करने के लिए।
6. कम्पनी के व्यवसाय का समस्त अथवा कोई भाग बेचने या अलग करने के लिए।
7. किसी अन्य कम्पनी या व्यक्तियों का समूह के साथ एकीकरण करने के लिए।

परिवर्तन की विधि (Procedure of Alteration)

कम्पनी के रजिस्टर्ड कार्यालय को एक राज्य से दूसरे राज्य में स्थानान्तरण के लिए निम्न विधि अपनाई जाती है:–

1. **विशेष प्रस्ताव पास करना (To pass a special Resolution) :** सबसे पहले कम्पनी को एक विशेष प्रस्ताव पास करना चाहिए और उसकी एक प्रतिलिपि पास किए जाने के 30 दिन के अन्दर रजिस्ट्रार ऑफ कम्पनिज के पास भेज देनी चाहिए।
2. **कम्पनी लॉ बोर्ड द्वारा पुष्टिकरण कराने के लिए आवेदन पत्र (An Application to Company Law Board for a Confirmation) :** परिवर्तन उस समय तक प्रभावशाली नहीं होगा जब तक कम्पनी लॉ बोर्ड द्वारा पुष्टिकरण नहीं हो जाता है। इस आशय के लिए कम्पनी लॉ बोर्ड में एक आवेदन-पत्र भेजना होता है। परिवर्तन की पुष्टि करने से पहले कम्पनी लॉ-बोर्ड की निम्नलिखित बातों से संतुष्टि को जानी चाहिए।

(i) कम्पनी के ऋणपत्रधारियों, लेनदारों तथा अन्य सभी व्यक्तियों को जिनके हितों पर इस परिवर्तन का प्रभाव पड़ेगा, समुचित सूचना दे दी गई है।

(ii) परिवर्तन का विरोध करने वाले प्रत्येक लेनदार के ऋण का तो भुगतान कर दिया गया है या उसकी सहमति प्राप्त कर ली गई है।

(iii) कम्पनी के सदस्यों तथा लेनदारों के हितों को ध्यान में रखते हुए परिवर्तन उचित व न्याय संगत है।

3. **पुष्टिकरण के आदेश का रजिस्ट्रेशन (Registration of Confirmation's Order) :** कम्पनी लॉ बोर्ड के पुष्टिकरण के आदेश की प्रमाणित प्रतिलिपि तथा परिवर्तित पार्षद सीमानियम की एक छपी हुई प्रतिलिपि, आदेश की तिथि से 3 महीने के अन्दर, दोनों राज्यों (वह राज्य जहाँ से कार्यालय हटाया जा रहा है तथा वह राज्य जहाँ कार्यालय ले जाया जा रहा है), के रजिस्ट्रारों के पास भेजी जानी चाहिए। इसके पश्चात् पुराने राज्य का रजिस्ट्रार नए राज्य के रजिस्ट्रार के पास उस कम्पनी से सम्बन्धित सभी प्रलेख इत्यादि भेज देगा।

4. **रजिस्ट्रेशन का प्रमाणपत्र (Certificate of Registration) :** कम्पनी लॉ बोर्ड द्वारा पुष्टिकरण के आदेश की प्रतिलिपि प्राप्त होने के एक महीने के अन्दर नये राज्य का रजिस्ट्रार इनका रजिस्ट्रेशन कर देते हैं तथा रजिस्ट्रेशन को प्रमाणित करते हैं।

5. **परिवर्तन की सूचना (Information of Change) :** रजिस्ट्रेशन का प्रमाण पत्र होने पर रजिस्टर्ड कार्यालय को नए स्थान पर स्थानान्तरित कर दिया जाता है और स्थान परिवर्तन के 30 दिन के अन्दर नए स्थान के पते की सूचना नए राज्य के रजिस्ट्रार को दे देनी चाहिए।

6. **उद्देश्य वाक्य का परिवर्तन (Alteration in object Clause) :** पार्षद सीमानियम के उद्देश्य वाक्य को परिवर्तित करना एक अत्यन्त कठिन कार्य है क्योंकि विधान द्वारा इसके परिवर्तन के लिए कुछ सीमाऐं निर्धारित की गई हैं। ये सीमाएं कम्पनी अधिनियम की धारा 17 में दी गई हैं। इन सीमाओं के बाहर कोई परिवर्तन नहीं किया जा सकता। कम्पनी अधिनियम की धारा 17(1) (अब 2013 अधिनियम की धारा 13) के अनुसार कम्पनी के उद्देश्य वाक्य में परिवर्तन तभी संभव है जबकि वह निम्नलिखित उद्देश्यों की पूर्ति के लिए किया जा रहा है:

1. व्यापार को अधिक कार्यकुशलता अथवा मितव्यता से चलाने के लिए।
2. नए व उन्नत साधनों से कम्पनी के मूल उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए।
3. व्यापार के स्थानीय क्षेत्र को विस्तृत करने या बदलने के लिए।
4. पार्षद सीमानियम में निर्दिष्ट किसी उद्देश्य को प्रतिबंधित करने या उसका परित्याग करने के लिए।
5. कम्पनी का कोई या समस्त भाग बेचने या अलग करने के लिए।
6. किसी अन्य कम्पनी या व्यक्तियों के समूह के साथ एकीकरण करने के लिए।

परिवर्तन की विधि (Procedure of Alteration)

पार्षद सीमानियम के उद्देश्य वाक्य में परिवर्तन करने के लिए निम्नलिखित विधि अपनाई जाती है–

1. विशेष प्रस्ताव पास करना।

2. कम्पनी लॉ बोर्ड द्वारा पुष्टि करवाना।

कम्पनी लॉ बोर्ड निम्नलिखित बातों से संतुष्ट होने पर पुष्टि करेगा।

अ) कम्पनी की ऋणपत्रधारियों, लेनदारों तथा अन्य सभी व्यक्तियों को, जिनके हितों पर इस परिवर्तन का प्रभाव पड़ेगा समुचित सूचना दे दी गई है।

ब) परिवर्तन का विरोध करने वाले प्रत्येक लेनदार के ऋण का या तो भुगतान कर दिया गया है या उसकी सहमति प्राप्त कर ली जाती है।

स) कम्पनी के सदस्यों तथा लेनदारों के हितों को ध्यान में रखते हुए परिवर्तन उचित व न्याय संगत है।

द) प्रस्तावित प्रस्ताव की सूचना रजिस्ट्रार के पास भेज दी गई है।

3. कम्पनी लॉ बोर्ड के पुष्टिकरण आदेश की प्रमाणित प्रतिलिपि रजिस्ट्रार के पास भेजना :

4. **दायित्व वाक्य का परिवर्तन (Alteration in Liability Clause) :** पार्षद सीमानियम के दायित्व वाक्य में यह उल्लेख किया जाता है कि कम्पनी में सदस्यों का दायित्व सीमित है। धारा 13 (2) के अनुसार, अंशों या गारंटी द्वारा सीमित कम्पनियों की दशा में उसके पार्षद सीमानियम में ऐसा विवरण होना चाहिए।

दायित्व वाक्य में परिवर्तन की व्यवस्था इस प्रकार है-

1. **सीमित दायित्व का असीमित में परिवर्तन**
   (Conversion of Limited Liability into Unlimited) :

यदि किसी कम्पनी के पार्षद सीमानियम में पूंजी को इस प्रकार परिवर्तित किया जाता है कि उसके सदस्यों का दायित्व बढ़ जाता है तो यह परिवर्तन उस समय तक कार्यान्वित व प्रभावशाली नहीं होगा, जब तक ऐसे सदस्यों की लिखित सहमति, जिनका दायित्व इस परिवर्तन से प्रभावित होता है, प्राप्त न कर ली जाए। यदि कम्पनी एक क्लब (Club) या उसके समान कोई अन्य संस्था है तो पार्षद सीमानियम में ऐसा परिवर्तन इसके सदस्यों को बार-बार देने वाले चन्दे या सामयिक चन्दे की राशि को बढ़ा देता है तो यह परिवर्तन वैध होगा, चाहे सदस्यों ने परिवर्तन के लिए अपनी लिखित सहमति न दी हो।

2. **संचालकों आदि के दायित्वों को असीमित करना**
   (To make the Liabilities of Directors etc. unlimited) :

यदि सीमित दायित्व वाली कम्पनी अपने अन्तर्नियमों द्वारा अधिकृत है, तो एक विशेष प्रस्ताव पास करके अपने पार्षद सीमानियम को इस प्रकार परिवर्तित कर सकती है कि इसके संचालकों, प्रबंध संचालक या प्रबंधक (Manager) के दायित्व असीमित हो जाएं। यह तभी संभव है जब कम्पनी अपने अन्तर्नियमों द्वारा अधिकृत हो तथा संबंधित अधिकारी अपने दायित्व को असीमित करने के लिए पूर्व सहमति दे दें।

परिवर्तन प्रस्ताव पास करने की तिथि से प्रभावशाली होगा। प्रस्ताव पास करने के 30 दिन के अन्दर, परिवर्तन की सूचना सम्बन्धित प्रपत्रों के साथ रजिस्ट्रार के पास भेजी जानी आवश्यक है।

3. असीमित दायित्व वाली कम्पनी का सीमित दायित्व वाली कम्पनी में परिवर्तन (Conversion of Unlimited Liability Company into Limited Liability Company):

यदि असीमित दायित्व वाली कम्पनी को सीमित दायित्व वाली कम्पनी में परिवर्तित किया जाता है तो कम्पनी को एक विशेष प्रस्ताव पास करना पड़ता है। ऐसे प्रस्ताव के 30 दिन के अन्दर प्रस्ताव की एक प्रति न्यायालय की स्वीकृति प्राप्त करने के लिए उसे भेजी जानी चाहिए। न्यायालय के पुष्टिकरण आदेश की तिथि 3 महीने के अंदर उसकी एक प्रतिलिपि रजिस्ट्रार के रजिस्ट्रेशन के लिए भेजी जानी चाहिए। परिवर्तन रजिस्ट्रार द्वारा रजिस्ट्रेशन की तिथि से प्रभावशाली होगा। अन्त में पार्षद सीमानियम में नया दायित्व वाक्य जोड़ा जाता है।

4. पूंजी वाक्य में परिवर्तन (Alteration in Capital Clause) :

यदि कम्पनी अन्तर्नियमों द्वारा अधिकृत है तो साधारण प्रस्ताव पास करके (अन्यथा व्यवस्था न होने पर शेष प्रस्ताव पास करके) एक सीमित दायित्व वाली कम्पनी अंशपूंजी में निम्नलिखित कार्यो को करके परिवर्तन कर सकती है-

1. नये अंशों का निर्गमन करके।
2. अपने अंशों को स्कन्ध (Stock) में तथा स्कन्ध को पुन: अंशों में परिवर्तित करके।
3. अंशों को कम मूल्य के अंशों में उपविभाजित करके।
4. जो अंश किसी के द्वारा नहीं लिये गये हों, उन्हें रद्द (Cancel) करके।

उपरोक्त परिवर्तन की सूचना रजिस्ट्रार के पास प्रस्ताव स्वीकृति की तिथि से 30 दिन के अन्दर भेज देनी चाहिए। अंशपूंजी में परिवर्तन निम्न तीन रूप में हो सकते हैं-

अ) अंशपूंजी में वृद्धि करना (Increase in Share Capital) :

अन्तर्नियमों में व्यवस्था होने पर एक अंश पूंजी वाली कम्पनी अपनी साधारण सभा (General Meeting) में साधारण प्रस्ताव पास करके नये अंश निर्गमन करके अपनी पूँजी में वृद्धि कर सकती है। पूँजी में वृद्धि किए जाने का प्रस्ताव पास होने की दशा में इसकी सूचना 30 दिन के अन्दर रजिस्ट्रार के पास भेज देनी चाहिए। इस परिवर्तन की सूचना न भेजने की दशा में कम्पनी तथा कम्पनी के प्रत्येक दोषी अधिकारी पर 40 रुपये प्रतिदिन की दर से आर्थिक दण्ड लगाया जा सकता है।

ब) अंशपूंजी में कमी करना (Reduction in Share Captial) :

अपने अन्तर्नियमों में व्यवस्था होने पर कोई भी अंशपूंजी वाली कम्पनी एक विशेष प्रस्ताव पास करके तथा न्यायालय से उसकी पुष्टि कराकर निम्न तरीकों से अपनी अंशपूंजी में कमी कर सकती है:

1. जो अंश पूर्णदत्त (Fully Paid Up) नहीं है, उनकी अदत्त (Unpaid) भाग की देयता (Liability) को रद्द करके।
2. जो पूर्णदत्त अंश नष्ट हो गया है, उसको रद्द करके।
3. अधिक पूंजी को अंशधारियों से वापस करके।
4. अन्य किसी ढंग से जिसे कम्पनी उचित समझे।

उपरोक्त तरीके से जिस कम्पनी की पूँजी में भारी कमी कर दी जाए, उसके नाम के आगे यह वाक्य की पूँजी और कम की गई (Reduced) जोड़ देना चाहिए तथा इसको भी रजिस्ट्रार के कार्यालय में जमा कर देना चाहिए।

स) पूँजी का पुनर्गठन करना (Reorganisation of Share Capital) :

यदि विभिन्न प्रकार के अंशों के अधिकार पार्षद सीमानियम द्वारा नियत हों, किन्तु उनके परिवर्तन के सम्बन्ध में पार्षद सीमानियम में कोई आदेश न हो, तो धारा 391 के अनुसार उन अंशों के अधिकारों में परिवर्तन किया जा सकता है। ऐसे परिवर्तन के लिए कम्पनी विधानमण्डल (Company Law Board) के समक्ष आवेदन पत्र प्रस्तुत किया जा सकता है, जिसमें उन सदस्यों की सभा के लिए जो इस परिवर्तन से प्रभावित होंगे, प्रार्थना की जाती है। कम्पनी की पूंजी का पुनर्गठन सम्बन्धी प्रस्ताव कम्पनी अधिनियम द्वारा बहुमत से निर्धारित होना चाहिए और कम्पनी विधानमण्डल द्वारा उसकी पुष्टि भी होनी चाहिए।

3.6 पार्षद अन्तर्नियम का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definition of Articles of Association)

कम्पनी के समामेलन के लिए कम्पनी रजिस्ट्रार के पास भेजे जाने वाला, पार्षद सीमानियम (Memorandum of Association) के अतिरिक्त यह दूसरा महत्वपूर्ण प्रलेख है। कम्पनी का पार्षद सीमानियम जहां कम्पनी की शक्तियों को परिभाषित करता है एवं कम्पनी निर्माण के उद्देश्यों को दर्शाता है, वहां पार्षद अन्तर्नियम उन उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए तरीकों को उल्लेख करता है। अत: पार्षद सीमानियम में आंतरिक प्रबंध (Internal Management) से संबंधित नियम होते हैं। कम्पनी का पार्षद अन्तर्नियम कम्पनी के पार्षद सीमानियम के अधीन एवं इसका सहायक होता है।

कम्पनी के पार्षद अन्तर्नियम की कुछ महत्वपूर्ण परिभाषाएं इस प्रकार हैं:

कम्पनी अधिनियम, 2013 की धारा 2 (5) के अनुसार, "अन्तर्नियम का आशय कम्पनी के उन पार्षद अन्तर्नियमों से है जो प्रारंभ में मूल रूप से पिछले अधिनियमों या वर्तमान अधिनियम के अन्तर्गत बनाये गये हों अथवा समय-समय पर परिवर्तित किये गये हों।"

("Articles means the articles of association of a company as originally framed or as altered from time to time in persuance of any previous Company Law or of this Act." Sec. 2 (5) of Indian Companies Act, 2013)

न्यायमूर्ति लार्ड बोवेन के अनुसार, "सीमानियम में वे आधारभूत शर्तें होती हैं जिनके आधार पर कम्पनी का समामेलन होता है तथा अन्तर्नियम कम्पनी के आन्तरिक नियम होते हैं।"

("Memorandum of Association contains the fundamental conditions on which the company is incorporated; Articles are the internal regulation of the company."- Justice Lord Bowen)

न्यायमूर्ति चार्ल्स वर्थ के अनुसार, "पार्षद अन्तर्नियम एक ऐसा प्रलेख है जो कम्पनी के सदस्यों के आपस में अधिकारों तथा उन तरीकों का नियमन करता है जिनके अन्तर्गत कम्पनी के व्यापार को चलाया जायेगा।"

("The Artcles of Association is a document regarding the rights of members of the company among themselves and the manner in which the business of the company shall be conducted." Justice Charles Worth)

3.7 पार्षद अन्तर्नियम का उद्देश्य एवं महत्त्व (Objectives & Importance of Article of Association)

पार्षद अन्तर्नियम कम्पनी का दूसरा महत्वपूर्ण प्रलेख है। इसमें पार्षद सीमानियम में दिए गए उद्देश्यों तथा कार्यों को करने की विधि तथा नियमों का उल्लेख होता है। पार्षद अन्तर्नियमों का प्रमुख उद्देश्य कम्पनी के आन्तरिक प्रबन्धक को नियन्त्रित करना तथा कम्पनी के अधिकारों को परिभाषित करना है। इस प्रलेख का महत्व निम्न से और अधिक स्पष्ट हो सकेगा:

(i) अन्तर्नियम कम्पनी के दैनिक प्रशासन की बाधाओं को दूर करने में सहायता करता है।

(ii) यह प्रलेख कम्पनी के अधिकारियों तथा अंशधारियों के बीच सम्बन्ध स्थापित करता है। प्रत्येक सदस्य कम्पनी को और कम्पनी प्रत्येक सदस्य को इन्हें बनाने के लिए बाध्य कर सकती है।

(iii) कम्पनी कुछ कार्य तभी कर सकती है जब अन्तर्नियमों में उनका करने का अधिकार दिया हो जैसे अंशों का हरण करना इत्यादि।

3.8 अन्तर्नियमों के आवश्यक तत्व (Essential Elements of Articles)

1. पार्षद अन्तर्नियम एक सार्वजनिक प्रलेख (Public Document) है जिसका रजिस्ट्रार के पास रजिस्ट्रेशन होता है।
2. यह सदस्यों के आपसी अधिकारों से संबंधित है।
3. पार्षद अन्तर्नियम कम्पनी के पार्षद सीमानियम के अधीन होता है।
4. यह एक महत्वपूर्ण प्रलेख भी है क्योंकि यह कम्पनी के आंतरिक प्रबंध, व्यवस्था एवं संचालन हेतु बनाया जाता है।
5. अन्तर्नियम कम्पनी के अपने पार्षद सीमानियम के विरोधी नहीं हो सकते।
6. यह कम्पनी तथा इसके सदस्यों के मध्य पारस्परिक अनुबंध स्थापित भी करता है।
7. इसमें आवश्यकतानुसार परिवर्तन भी किये जा सकते हैं।
8. पार्षद अन्तर्नियम व्यापार के संचालन को नियंत्रित एवं नियमित भी करता है।
9. पार्षद अन्तर्नियम में कम्पनी के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए संबंधित साधनों व विधियों का उल्लेख होता है।
10. यह छपा हुआ, हस्तांतरित एवं अनुच्छेदों में विभाजित होता है।

3.9 पार्षद अन्तर्नियमों की विषय-वस्तु-सामग्री (Contents or Subject Matter of Articles of Association)

सामान्यत: कम्पनी के अन्तर्नियमों में उन सब विषयों के नियमों एवं उपनियमों का समावेश किया

जाता है जो कम्पनी के आंतरिक प्रबंध तथा संचालन से संबंधित होते हैं। इसमें मुख्यत: निम्नलिखित संबंधित प्रावधान होते हैं-

1. सारणी 'अ' (Table A) के कौन-कौन से नियम लागू होंगे?
2. प्रारंभिक समझौते की स्वीकृति की व्यवस्था।
3. अंशों के आबंटन की विधि।
4. न्यूनतम अभिदान राशि का निर्धारण करना।
5. अंश पूंजी में वृद्धि या कमी।
6. अंशों का हस्तांतरण व संचरण।
7. अंशों पर पूर्वाधिकार।
8. अंशों को जब्त करना।
9. ऋण लेना।
10. अभिगोपन कमीशन का भुगतान।
11. अंशों एवं ऋणपत्रों पर कमीशन व दलाली का भुगतान।
12. कम्पनी के पुनर्गठन की विधि।
13. कम्पनी की सामान्य सभाओं की विधि, सूचना, न्यूनतम कार्यवाहक संख्या, स्थगन प्रतिपुरुष तथा मतदान एवं सभापति सम्बन्धी नियम।
14. संचालकों (Directors) की संख्या, नियुक्ति, योग्यताएं पारिश्रमिक आदि।
15. कम्पनी की लेखा पुस्तकें एवं उनको रखने की विधि।
16. लाभांश व विधियां (Dividends and Reserves) के विषय में प्रावधान।
17. अंकेक्षकों की नियुक्ति तथा पारिश्रमिक निर्धारण।
18. अंशों का स्टॉक में बदलना या स्टॉक का अंशों में बदलना।
19. अंश वारंट (Share Warrant) के विषय में नियम।
20. सदस्यों के मताधिकार, मतदान एवं चुनाव आदि के विषय में नियम।
21. संचालक मण्डल की कार्यवाही (Proceeding of Board of Directors)।
22. कम्पनी की सार्वमुद्रा का प्रयोग।
23. कम्पनी के समापन सम्बन्धी व्यवस्था।

3.10 अन्तर्नियमों में परिवर्तन (Alterations of Articles)

एक बार अन्तर्नियमों को बनाने के बाद उनमें परिवर्तन किया जा सकता है। अन्तर्नियमों में परिवर्तन करने के लिए कम्पनी को विधान द्वारा वैधानिक अधिकार दिये गये हैं। अन्तर्नियमों में कोई ऐसा प्रावधान नहीं किया जा सकता जो कि इसे परिवर्तन होने से रोकता हो।

जब भी कोई कम्पनी अपने अन्तर्नियम में परिवर्तन कराना चाहती है तो उसे एक विशेष प्रस्ताव पारित करना होगा। परन्तु कम्पनी अन्तर्नियम में कोई भी ऐसा परिवर्तन नहीं किया जा सकता जो कम्पनी अधिनियम या कम्पनी के अपने पार्षद सीमानियम के प्रावधानों के विरूद्ध हो।

यदि अन्तर्नियमों में परिवर्तन का प्रभाव एक सार्वजनिक कम्पनी में बदलना हो जाए तो ऐसा परिवर्तन तब तक सार्थक नहीं होगा जब तक ऐसे परिवर्तन की अनुमति केन्द्रीय सरकार से प्राप्त न कर ली जाए। अन्तर्नियमों का परिवर्तन कम्पनी के हित में होना चाहिए।

परिवर्तन की सीमाएं (Limitations to Alteration) :

कोई भी कम्पनी साधारण सभा में विशेष प्रस्ताव पास करके अपने अन्तर्नियमों में परिवर्तन कर तो सकती है पर इस पर भी कुछ प्रतिबन्ध लगाये गये हैं जिनको दो भागों में बाँटा जा सकता है–

1. वैधानिक प्रतिबन्ध (Statutory Restrictions)
2. न्यायोचित प्रतिबन्ध (Judicial Restrictions)

1. वैधानिक प्रतिबन्ध (Statutory Restrictions)

कम्पनी के अन्तर्नियमों के परिवर्तन पर लगाये गये वैधानिक प्रतिबंध निम्नलिखित हैं–

1. परिवर्तन कम्पनी अधिनियम के विरूद्ध नहीं होना चाहिए। (Alteration must not be against the provisions of the Companies Act)।
2. परिवर्तन पार्षद अधिनियम के विरूद्ध नहीं होना चाहिए (Alteration should not be inconsistent with Memorandum of Association)।
3. केन्द्रीय सरकार की अनुमति वाले परिवर्तन (Alteration requiring approval of Central Government) : कुछ परिवर्तन जैसे सार्वजनिक कम्पनी को निजी कम्पनी में परिवर्तित करना, सार्वजनिक कम्पनी के संचालकों का पारिश्रमिक निर्धारण आदि में केन्द्रीय सरकार की पूर्वलिखित अनुमति प्राप्त करना आवश्यक है।
4. संचालकों की नियुक्ति सम्बन्धी परिवर्तन (Alteration regarding the Appointment of Directors) : कुछ परिवर्तन जैसे सार्वजनिक कम्पनी को निजी कम्पनी में परिवर्तन करना, सार्वजनिक कम्पनी के संचालकों का पारिश्रमिक निर्धारण आदि में केन्द्रीय सरकार की पूर्वलिखित अनुमति प्राप्त करना आवश्यक है।
5. संचालकों की नियुक्ति सम्बन्धी परिवर्तन (Alteration regarding the Appointment of Directors) : इस प्रकार के परिवर्तन जो संचालकों की नियुक्ति, पुन: नियुक्ति, पारिश्रमिक, आदि से सम्बन्ध रखते हों, उनके लिए केन्द्रीय सरकार की सहमति प्राप्त करना आवश्यक है। परन्तु यह नियम उन निजी कम्पनियों पर लागू नहीं होता जो किसी सार्वजनिक कम्पनी की सहायक कम्पनी नहीं है।
6. रजिस्ट्रार को प्रस्ताव भेजना (To send a copy of resolution to the Registrar of Companies): परिवर्तन का विशेष प्रस्ताव पारित होने की तिथि के 30 दिन के अन्दर प्रस्ताव की एक प्रतिलिपि रजिस्ट्रार ऑफ कम्पनिज को अवश्य प्रस्तुत करनी चाहिए।

7. कम्पनी लॉ बोर्ड (15-6-88 से पहले कम्पनी लॉ बोर्ड के स्थान पर न्यायालय शब्द था) की आज्ञा (Permission of Company Law Board) : यदि पहले कभी अन्तर्नियम में परिवर्तन कम्पनी लॉ बोर्ड के आदेश पर हुआ हो तो उस व्यवस्था को पुन: कम्पनी लॉ बोर्ड की आज्ञा लिए बिना नहीं बदला जा सकता। कम्पनी लॉ बोर्ड ऐसा आदेश कुप्रबंध से सदस्यों को संरक्षण प्रदान करने के लिए देता है।

2. न्यायोचित प्रतिबंध (Judicial Restriction) :

अन्तर्नियमों के परिवर्तन के सम्बन्ध में समय-समय पर न्यायालय के समक्ष कई मामले (Cases) आए। इनमें दिये गये निर्णयों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि इनमें अन्तर्नियमों के परिवर्तनों पर निम्नलिखित न्यायिक प्रतिबंध लगाये गये हैं-

1. परिवर्तन कम्पनी के हित में हो एवं पूर्ण सद्भावना से हो (Alteration should be in the interest of the company and in good faith).
2. परिवर्तन अवैध व्यापार की आज्ञा देने वाला नहीं हो (Alteration should not permit illegal legal business).
3. परिवर्तन अवैधानिक नहीं होना चाहिए (Alteration should not be illegal).
4. परिवर्तन न्यायसंगत हो (Alteration should be justifiable).
5. परिवर्तन ऐसा नहीं होना चाहिए जो कि कम्पनी को अन्य पक्षों के साथ किये गये अनुबंधों का खंडन करने के लिए अधिकृत करें। (Alteration cannot be made which enables a company to commit breach of contract with third party).

3.11 आंतरिक प्रबंध का सिद्धांत (Doctrine of Indoor Management)

पार्षद अन्तर्नियम एवं सीमानियम की रचनात्मक सूचना (Constructive Notice of Memorandum and Articles) के अनुसार यह मान लिया जाता है कि प्रत्येक व्यक्ति जो भी कम्पनी से अनुबंध कर रहा है, उसने ये दोनों प्रलेख पढ़ एवं समझ भी लिए हैं। ऐसा इसलिए है क्योंकि कम्पनी ने दोनों प्रलेख रजिस्ट्रार ऑफ कम्पनीज के पास रजिस्टर्ड करा दिए हैं।

परन्तु आंतरिक प्रबंध का सिद्धांत इस रचनात्मक सूचना के ऊपर एक प्रतिबंध है। आंतरिक प्रबंध के सिद्धांत के अनुसार कम्पनी से व्यवहार करने वाले सभी बाहरी व्यक्तियों का यह उत्तरदायित्व तो है कि वे पंजीकृत प्रलेखों को पढ़कर इस बात का पता लगाये कि किये जाने वाला व्यवहार कम्पनी के प्रलेखों के प्रावधानों के अनुरूप है या नहीं। परन्तु उनको कम्पनी की आंतरिक अनियमितताओं के सम्बन्ध में जांच करने की आवश्यकता नहीं। अत: बाहरी व्यक्तियों को यह मान लेने का अधिकार है कि कम्पनी का आंतरिक प्रबंध नियमित रूप से चल रहा है। बाहरी व्यक्तियों को इस प्रबंध के औचित्य पर शंका करने का कर्त्तव्य नहीं है।

आन्तरिक प्रबंध के नियम के अपवाद (Exceptions to the Doctrine of Indoor Management):

इस सिद्धांत के कुछ अपवाद हैं। अत: निम्नलिखित दशाओं में इस सिद्धांत से सुरक्षा प्राप्त करने का अधिकार समाप्त हो जाता है-

1. अनियमितता की जानकारी होना (Knowledge of the lrregularity)।

2. लापरवाही दिखाना (To show Negligence)।

3. जालसाजी (A case of forgery)।

4. अन्तर्नियमों की अनभिज्ञता (No knowledge of Articles)।

3.12 अधिकारों के परे अथवा शक्तिबाह्य कार्यों का सिद्धांत (Doctrine of Ultra Vires)

ऐसा कोई भी कार्य जो कम्पनी अपने उद्देश्यों के विरुद्ध करती है, उसे अधिकार के परे कार्य कहा जाता है। अधिकार के परे कार्यों के सिद्धांत के अनुसार ऐसा कार्य व्यर्थ होता है। इस प्रकार के कार्य का कोई वैधानिक प्रभाव नहीं होता। इस प्रकार के कार्यों की बात में पुष्टि नहीं की जा सकती।

अधिकार के परे क्रियाओं को तीन भागों में बांटा जा सकता है:

1. वे कार्य जो कम्पनी अधिनियम के बाहर हैं।

2. वे कार्य जो पार्षद सीमानियम के बाहर हैं।

3. वे कार्य जो पार्षद अन्तर्नियमों के बाहर हैं।

प्रथम दो प्रकार के कार्यों का कोई वैधानिक प्रभाव नहीं होता। इस प्रकार के कार्यों को बाद में यदि कम्पनी के सभी सदस्य भी चाहें तो वैध नहीं बना सकते एवं न ही उनकी पुष्टि की जा सकती है।

परन्तु ऐसे कार्य जो मात्र कम्पनी के पार्षद अन्तर्नियम के बाहर हैं अर्थात् वे कम्पनी अधिनियम एवं पार्षद सीमानियम के बाहर नहीं है, उनको अन्तर्नियमों में विशेष प्रस्ताव द्वारा आवश्यक परिवर्तन करके वैधानिक बनाया जा सकता है।

अधिकार के परे कार्यों/व्यवहारों के प्रभाव (Effects of Ultra Vires Acts/Transactions) :

अधिकार के परे व्यवहारों के निम्नलिखित प्रभाव होते हैं-

1. **संचालकों का व्यक्तिगत दायित्व (Personal Liability of Directors) :** यदि कोई भी कार्य पार्षद सीमानियम के बाहर किया जाए तो संचालक उसके लिए व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी होंगे। अत: यह देखना कि कम्पनी की पूँजी का प्रयोग न्यायसंगत रूप से हो रहा है या नहीं, संचालकों का कर्त्तव्य है।

2. **निषेधज्ञा (Injunction) :** कम्पनी का कोई भी सदस्य अधिकार के परे कार्यों के लिए कम्पनी को रोक सकता है।

3. **अधिकार का आश्वासन भंग (Breach of Warranty of Authority) :** संचालक कम्पनी के एजेन्ट के रूप में भी कार्य करता है, अत: एक एजेन्ट अधिकारों का आश्वासन भंग के कारण तीसरे पक्षकारों के प्रति व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी होता है। वीकस बनाम प्रोपर्टी का वाद इस सम्बन्ध में महत्वपूर्ण है।

4. **अधिकारों के बाहर खरीदी गई सम्पत्ति (Ultra Vires Acquired property) :** यदि कम्पनी के धन से कोई अधिकार से परे सम्पत्ति खरीदी गई है तो इसके सम्बन्ध में कम्पनी की स्थिति एक नाबालिग की तरह होती है। अत: सम्पत्ति के सम्बन्ध में कम्पनी के अधिकार सुरक्षित रहते हैं।

5. **अभियोगों का अधिकार समाप्त (No right to sue each other) :** अधिकार के परे कार्यों के लिए न तो कम्पनी के विरूद्ध दावा (Case) प्रस्तुत किया जा सकता है एवं न ही कम्पनी किसी पर वाद प्रस्तुत कर सकती हैं, क्योंकि पार्षद सीमानियम कम्पनी का सार्वजनिक प्रलेख होते हैं।

6. **अधिकारों के बाहर उधार देना (Ultra-Vires Lending) :** यदि कम्पनी कोई ऋण अपने अधिकारों से बाहर दे देती है तो ऋणी अपने दायित्व से मुक्त नहीं हो जाता। इस प्रकार ऋणी अपने दायित्व से मात्र इस बात पर शक्ति नहीं प्राप्त कर सकता कि उधार देने वाले को उधार देने का अधिकार नहीं था।

7. **शक्तिबाह्य अनुबंध पूर्णरूप से व्यर्थ होते हैं (Ultra-Vires Transactions are null and void):** कम्पनी के व्यवहार यदि पार्षद सीमानियम के विरूद्ध (अत: उद्देश्य वाक्य के बाहर) किए गए हैं तो ये पूर्णरूप से व्यर्थ होने एवं उन पर कोई कानूनी कार्यवाही नहीं की जा सकती।

अधिकार के परे कार्यो के सिद्धांत के अपवाद (Exceptions to the Doctrine of Ultra Vires):

अधिकार के परे कार्यों के सिद्धांत के निम्नलिखित अपवाद हैं-

1. यदि संचालकों ने ऐसा कोई कार्य किया हो तो उनके अधिकार सीमा के बाहर हो परन्तु कम्पनी की अधिकार सीमा में हो तो ऐसे कार्य की बाद में पुष्टि की जा सकती है।

2. यदि कोई कार्य कम्पनी के अन्तर्नियम के बाहर हो परन्तु कम्पनी के अधिकार क्षेत्र के अंदर है तो अन्तर्नियम में परिवर्तन करके इसकी पुष्टि की जा सकती है।

3. यदि कोई कार्य कम्पनी के अधिकार क्षेत्र में तो है परन्तु अनियमित ढंग से किया गया हो तो सभी अंशधारी मिलकर इसकी पुष्टि कर सकते हैं।

4. यदि कोई व्यक्ति कम्पनी के अधिकार से परे ऋण प्राप्त कर लेता है तो कम्पनी ऋणी पर ऋण प्राप्त करने के लिए दावा कर सकती है।

5. यदि कम्पनी ने किसी व्यक्ति से अधिकार से परे ऋण प्राप्त किया हो एवं उस धन का उपयोग वह अपने उन ऋणों का भुगतान करने के लिए करती है जोकि कार्यक्षेत्र में आते हैं तो ऋण देने वाला व्यक्ति उस देनदार का स्थान ले लेता है जिसे अदायगी दी गई है। अत: वह अपना ऋण प्राप्त कर सकता है।

6. यदि कोई भी कार्य कम्पनी के लिए अधिकार से परे हो परन्तु उससे उत्पन्न व्यक्तिगत अधिकार प्रभावित नहीं होंगे।

7. यदि कम्पनी के संचालकों ने अधिकार से परे व्यक्तिगत रूप से ऋण प्राप्त किया हो तो ऋण की अदायगी के लिए संचालक व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी होंगे।

3.13 पार्षद सीमानियम व पार्षद अन्तर्नियम में अन्तर (Distinction between Memorandum and Articles)

आपने देखा होगा कि दोनों ही प्रलेख कम्पनी का व्यापार प्रारम्भ करने के लिए महत्वपूर्ण होते हैं फिर भी इन दोनों में आधारभूत अन्तर इस प्रकार जाना जा सकता है:

1. पार्षद सीमानियम कम्पनी का चार्टर होता है। यह कम्पनी तथा बाहरी जगत में सम्बन्ध स्थापित करता है जबकि पार्षद अन्तर्नियम एक सहायक प्रलेख होता है तथा यह कम्पनी व सदस्यों में सम्बन्ध स्थापित करता है।

2. पार्षद सीमानियम में परिवर्तन करना आसान नहीं है जबकि पार्षद अन्तर्नियम में एक विशेष प्रस्ताव पास करके परिवर्तन किया जा सकता है।

3. पार्षद सीमानियम के विरूद्ध किए गए कार्य पूर्ण रूप से व्यर्थ होते हैं जबकि अन्तर्नियम के विरूद्ध किए गए कार्यों की पुष्टि की जा सकती है यदि वे कार्य सीमानियम के अन्तर्गत हों।

4. सारांश (Summary)

इस पाठ का अध्ययन करने के पश्चात् आपने जाना होगा कि वास्तव में पार्षद सीमानियम कम्पनी की आधारशिला है जिस पर कम्पनी का ढाँचा आधारित है कि कम्पनी वह कार्य नहीं करती जिसका उल्लेख पार्षद सीमानियम में नहीं किया है। यह सार्वजनिक प्रलेख है और कम्पनी से व्यवहार करने वाले व्यक्ति इसकी प्रतिलिपि की मांग कर सकते हैं क्योंकि उनसे यह आशा की जाती है कि वे इसकी विषय-सामग्री से परिचित होंगे।

पार्षद अन्तर्नियम कम्पनी के पार्षद सीमानियम के अधीन बनाये गए ऐसे नियम तथा उपनियम हैं जिनसे कम्पनी के आन्तरिक मामलों को नियन्त्रित किया जाता है। कम्पनी के अन्तर्नियम इसके सीमानियम के सहायक माने जाते हैं तथा ये सीमानियम की शर्तों व व्यवस्थाओं के प्रतिकूल नहीं हो सकते।

5. प्रस्तावित पुस्तकें (Suggested Readings)

1. Company Law & Auditing - Dr. Ashok Sharma
   VK India Enterprises
2. Company Law - M C Kuchal
3. Company Law - N D Kapoor
4. Company Law & Auditing - Dr. R L Nolakha
5. Company Law & Auditing - A K Tondon.

6. नमूने के लिए प्रश्न (Sample Questions)

1. "पार्षद सीमानियम कम्पनी का सबसे महत्वपूर्ण प्रलेख होता है।" व्याख्या कीजिए एवं सीमानियम के विभिन्न वाक्यों (Clauses) की व्याख्या कीजिए।

2. 'पार्षद सीमानियम' की परिभाषा दीजिए। इस प्रलेख का उद्देश्य वाक्य (Object Clause) किस प्रकार परिवर्तित किया जा सकता है।

3. पार्षद अन्तर्नियम को परिभाषित कीजिए तथा इसकी विवरण सामग्री दीजिए। बताइये कि क्या प्रत्येक कम्पनी का अपना अन्तर्नियम होना आवश्यक है।

4. आन्तरिक प्रबन्ध के सिद्धान्त को समझाएं तथा इसके अपवादों को बताइये।

5. कम्पनी संचालकों एवं अन्तर्नियमों के प्रति 'अधिकार के परे' (Doctrine of Ultravires) कार्यों के सिद्धांत को बताइए। इसके क्या वैधानिक प्रमाण हैं?

B.Com - II

Subject : Company Law & Auditing **Writer : Dr. Jagdish Gupta**

Lesson No : 3 **Updated By : Ashu K. Garg**

प्रविवरण
(Prospectus)

अध्याय की रूपरेखा (Structure of the Lesson)

1. भूमिका (Introduction)
2. अध्याय के उद्देश्य (Objectives of the Chapter)
3. विषय का प्रस्तुतीकरण (Presentation of Contents)
   - 3.1 प्रविवरण का अर्थ व परिभाषा
   - 3.2 प्रविवरण का स्वभाव
   - 3.3 प्रविवरण के उद्देश्य
   - 3.4 प्रविवरण के निर्गमन एवं रजिस्ट्रेशन की वैधानिक आवश्यकताएं
   - 3.5 प्रविवरण की विषय-सामग्री
   - 3.6 प्रविवरण की रजिस्ट्री
   - 3.7 प्रविवरण में असत्य कथन के परिणाम
4. साराँश (Summary)
5. प्रस्तावित पुस्तकें (Suggested Readings)
6. नमूने के लिये प्रश्न (Sample Questions)

1. भूमिका (Introduction)

कम्पनी के निर्माण की अंतिम स्थिति प्रविवरण को तैयार करने एवं उसको रजिस्ट्रार ऑफ कम्पनिज के पास प्रस्तुत करने से प्रारम्भ होती है तथा व्यापार प्रारंभ का प्रमाण-पत्र प्राप्त करने पर उसका अंत होता है।

कम्पनी के समामेलन के तुरन्त पश्चात् ही एक अलोक कम्पनी अपना व्यापार प्रारंभ कर सकती है, परन्तु कम्पनी अधिनियम के अनुसार एक लोक कम्पनी द्वारा व्यापार प्रारंभ करने के लिए कुछ प्रतिबंध हैं।

यदि लोक कम्पनी ने जनता के लिए प्रविरण निर्गमित किया है, तो वह व्यापार का प्रारम्भ उस समय नहीं कर सकती जब तक : (i) न्यूनतम अंशों का आबंटन नहीं हो जाता। (ii) प्रत्येक संचालक अपने द्वारा लिए हुए अंशों पर प्रार्थना-पत्र तथा आबंटन की किस्तों के बराबर मूल्य का भुगतान नहीं

कर देता; तथा (iii) रजिस्ट्रार के पास किसी एक संचालक अथवा सचिव द्वारा प्रमाणित इस बात की घोषणा नहीं पहुंच जाती कि उपर्युक्त आवश्यकताओं की पूर्ति कर दी गई है। यदि लोक कम्पनी ने जनता के लिए प्रविवरण निर्गमित नहीं किया है, तो वह व्यापार का प्रारंभ उस समय तक नहीं करती जब तक : (i) रजिस्ट्रार के पास प्रविवरण का स्थानापत्र विवरण पत्र प्रस्तुत नहीं कर दिया जाता; (ii) प्रत्येक संचालक अपने द्वारा लिए हुए अंशों पर प्रार्थना-पत्र तथा आबंटन की किस्तों के बराबर मूल्य का भुगतान नहीं कर देता; तथा (iii) रजिस्ट्रार के पास किसी एक संचालक अथवा सचिव द्वारा प्रमाणित इस बात की एक घोषणा नहीं पहुंच जाती कि उपर्युक्त आवश्यकताओं की पूर्ति कर दी गई है।

उपर्युक्त सभी आवश्यकताओं की पूर्ति हो जाने पर, रजिस्ट्रार एक प्रमाण-पत्र द्वारा यह प्रमाणित करेगा कि कम्पनी व्यापार प्रारंभ करने का अधिकार रखती है। यह प्रमाण-पत्र ''व्यापार प्रारंभ करने का प्रमाण-पत्र'' (Certificate for Commencement of Business) कहलाता है। यह प्रमाण-पत्र इस बात का निश्चयात्मक प्रमाण होता है कि कम्पनी व्यापार प्रारंभ करने का अधिकार रखती है।

इस प्रकार, समामेलन के बाद लोक कम्पनी द्वारा व्यापार प्रारंभ किये जाने के संबंध में तीन महत्वपूर्ण स्थितियां हैं: प्रविवरण अथवा प्रविवरण का स्थानापत्र विवरण-पत्र अंशों के आबंटन तथा व्यापार करने का प्रमाण-पत्र। अब इन दशाओं का विस्तृत वर्णन किया जाना आवश्यक है।

2. अध्याय के उद्देश्य (Objectives of the Chapter)

इस अध्याय में प्रविवरण के बारे में विस्तार से बताया गया है। इसे पढ़ने के पश्चात् आपको निम्न जानकारी प्राप्त होगी:

प्रविवरण का अर्थ व परिभाषा

प्रविवरण का स्वभाव, उद्देश्य व निर्गमन की वैधानिक आवश्यकताएं।

प्रविवरण की विषय-सामग्री

प्रविवरण में असत्य कथन के परिणाम

प्रविवरण का स्थानापन्न विवरण-पत्र (Statement in Lieu of prospectus)

3. विषय का प्रस्तुतीकरण (Presentation of Contents)

इस पाठ में प्रविवरण विषयों की जानकारी निम्न प्रकार प्रस्तुत की गई है:

3.1 प्रविवरण का अर्थ व परिभाषा (Meaning and Definition of Prospectus)

समामेलन के तुरन्त पश्चात् एक अलोक कम्पनी अपना व्यापार प्रारंभ कर सकती हैं, परन्तु एक लोक कम्पनी के लिए पूंजी एकत्रित करने की आवश्यकता होती है। कुछ दशाओं में ऐसी पूंजी निजी रूप में (अर्थात् सामान्य जनता को आमंत्रित न करके) भी प्राप्त की जा सकती है, परन्तु सामान्य रूप से इस कार्य के लिए जनता को आमंत्रित किया जाता है। यह कार्य प्रविवरण को निर्गमित करके किया जाता है। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि लोक कम्पनी के लिए भी प्रविवरण निर्गमित करना अनिवार्य नहीं है। इसके अतिरिक्त अलोक कम्पनी तो अधिनियम के अधीन प्रविवरण निर्गमित कर ही नहीं सकती।

दशाएं जिनमें प्रविवरण निर्गमित करना आवश्यक नहीं- अधिनियम के अधीन कुछ ऐसी दशाएं हैं जिनमें कम्पनी द्वारा प्रविवरण निर्गमित करने की आवश्यकता नहीं :

1. जब अंश अथवा ऋण–पत्र कम्पनी द्वारा प्रत्यक्ष रूप में जनता को प्रस्तावित नहीं किये जाते, ऐसी दशा में कम्पनी अपने अंशों अथवा ऋणपत्रों को किसी अन्य व्यक्ति अथवा संस्था को इस आशय से बेच देती है कि वह उस व्यक्ति अथवा संस्था द्वारा जनता के लिए प्रस्तावित किये जायें। ऐसी संस्था प्रविवरण का दायित्व स्वयं ले लेती है।

2. जब अंश अथवा ऋणपत्र विद्यमान अंशधारियों अथवा ऋण–पत्रधारियों को प्रस्तावित किये जाते हैं।

3. जब निर्गमन ऐसे अंशों अथवा ऋणपत्रों के लिए है जो कि सभी रूपों में उसी प्रकार के हैं जैसे कि पहले निर्गमित किये जा चुके हैं तथा किसी मान्य स्कन्ध बाजार में उनका व्यवहार किया जाता है।

कम्पनी अधिनियम की धारा 2(70) के अनुसार, "प्रविवरण से आशय एक ऐसे प्रपत्र से है, जो प्रविवरण की तरह निर्गमित किया जाता है और इसके अन्तर्गत धारा 32 में निर्दिष्ट कोई लाल हैरिंग प्रविवरण अथवा धारा 31 में निर्दिष्ट शेल्फ प्रविवरण या कोई भी सूचना–पत्र (नोटिस), सामान्य पत्र, विज्ञापन अथवा ऐसा नियंत्रण सम्मिलित है जो किसी समामेलित (निगमित) संस्था की प्रतिभूतियों में अंशदान अथवा क्रय करने के लिये जनता को आमन्त्रित करता है।"

(Prospectus means any document described or issued as a Prospectus and includes a red-herring prospectus referred to in section 32 or shelf prospectus referred to section 31 or any notice, circular, advertisement or other document inviting offers from the public for the subscription or purchase of any securities of a body corporate.)

एक शेल्फ प्रविवरण से आशय एक ऐसे प्रविवरण से है जिसके संबंध में उसमें सम्मिलित प्रतिभूतियाँ या वर्ग की प्रतिभूतियों को किसी और प्रविवरण को जारी किये बिना एक निर्दिष्ट अवधि तक एक या अधिक निर्गमन में अंशदान के लिये जारी किया गया है।

गर्भित प्रविवरण (Prospectus by Implication) Or माना जाने वाला प्रविवरण (Deemed Prospectus)

यह महत्वपूर्ण है कि प्रविवरण का एक अन्य रूप भी होता है और 'गर्भित प्रविवरण' (Prospectus by Implication) कहते हैं। कभी–कभी कम्पनी अपने अंशों अथवा ऋण–पत्रों को बेचने के लिए प्रत्यक्ष रूप में जनता को आमन्त्रित नहीं करती। कम्पनी अपने अंशों अथवा ऋणपत्रों को किसी अन्य व्यक्ति अथवा संस्था को इस आशय से बेच देती है कि वह उस व्यक्ति अथवा संस्था द्वारा जनता के लिए प्रस्तावित किये जायें। ऐसी संस्था प्रविवरण का दायित्व स्वयं ले सकती है, और उसका पारिश्रमिक कमीशन के रूप में नहीं; बल्कि जनता को अंश बेचकर लाभ के रूप में होता है। ऐसी संस्था को प्राय: ऐसे आबंटन–पत्र निर्गमित कर दिये जाते हैं जोकि बाद में वास्तविक क्रेताओं के नाम हस्तान्तरिक किये जा सकें। ऐसी दशा में कोई भी प्रपत्र जिसके द्वारा जनता के लिए अंशों की बिक्री का प्रस्ताव (Offer of shares for sale) किया जाता है, कम्पनी द्वारा निर्गमित प्रविवरण ही माना जाता है।

इस संबन्ध में वैधानिक व्यवस्थाएं निम्नलिखित हैं:

1. इस प्रपत्र पर दिया गया विवरण कम्पनी द्वारा दिया गया माना जाएगा और संचालक व प्रवर्तक मिथ्या वर्णन के लिये उसी प्रकार दायी होंगे जैसे मूल प्रविवरण के निर्गमन पर वह दायी होते हैं।

2. इन प्रपत्रों पर दिये गये विवरणों के लिये निर्गमन गृह के अधिकारी भी उत्तरदायी होते हैं।

3. जनता को बिक्री प्रस्ताव रखने वाला व्यक्ति संचालक या प्रस्तावित संचालक के रूप में दायी माना जाएगा।

4. निर्गमन संस्था (Issuing House) द्वारा यह अंश या ऋण-पत्र कम्पनी के साथ अनुबंध की तिथि के 6 माह के अन्दर जनता को जारी कर दिये जाएं।

5. निर्गमन संस्था द्वारा यह प्रस्ताव करने के समय, संपूर्ण प्रतिफल (Consideration) कम्पनी के द्वारा प्राप्त न किया गया हो, ऐसे प्रलेख में निम्नलिखित सूचनाएं भी होनी चाहिए:

   (i) जिन अंशों या ऋण-पत्रों से ऐसा प्रस्ताव सम्बन्धित हो उसके सम्बन्ध में कम्पनी द्वारा प्राप्त होने वाली प्रतिफल की शुद्ध राशि, और

   (ii) जिस अनुबंध के अधीन ऐसे अंश और ऋणपत्र आबंटित किये गये हैं अथवा आबंटित किये जाने हैं, उसका निरिक्षण करने का स्थान और समय।

विक्रय प्रस्ताव में भी वह सब विवरण (Details) होने चाहिए जो कि एक प्रविवरण में होते हैं। क्योंकि प्रविवरण पर लागू होने वाले सभी प्रावधान भावित प्रविवरण पर भी लागू होते हैं। अत: सभी बातों का सच्चाई से वर्णन किया जाना चाहिए। (धारा 25)।

3.2 प्रविवरण का स्वभाव (Nature of Prospectus)

उपर्युक्त दोनों ही दशाओं में प्रविवरण के स्वभाव का प्रश्न महत्वपूर्ण है। यह प्रश्न महत्वपूर्ण है कि कम्पनी द्वारा निर्गमित ऐसा कोई प्रविवरण है या नहीं। प्रविवरण का सारतत्व यह है कि वह जनता के लिए अंशों अथवा ऋणपत्रों को खरीदने के लिए प्रस्ताव अथवा नियन्त्रण है। यदि वह इस प्रकार जनता के लिए प्रस्ताव अथवा नियन्त्रण नहीं है तो वह प्रविवरण की परिभाषा के अंतर्गत नहीं आता।

कम्पनी अधिनियम 2013 के अनुसार, यदि अंशों अथवा ऋणपत्रों का प्रस्ताव अथवा निमन्त्रण जनता के किसी भाग के लिए किया गया है, तो भी जनता के लिए प्रस्ताव माना जायेगा और प्रविवरण होगा। यह मान लिया गया है कि, जनता के एक सीमित भाग के लिए किया गया प्रस्ताव 'जनता के लिए प्रस्ताव' हो सकता है। (South of England Natural Gas Co. के एक मामले में एक गैस कम्पनी के प्रवर्तक द्वारा कम्पनी की ओर से प्रविवरण निर्गमित किया गया। यह प्रविवरण केवल अन्य गैस कम्पनियों के अंशधारियों के लिए निर्गमित किया गया और इस पर शब्द 'सीमित प्रचलन के लिए' लिखे थे, और इसकी 3,000 प्रतिलिपियां निर्गमित की गईं। यह माना गया कि यद्यपि प्रस्ताव केवल एक सीमित वर्ग के लिए था, फिर भी वह 'जनता के लिए प्रस्ताव' था।

इसके विपरीत, कोई प्रस्ताव अथवा निमन्त्रण निम्नलिखित दशाओं में जनता के लिए किया गया नहीं माना जायेगा।

अ) यदि जिन व्यक्तियों ने उसे प्राप्त किया है उनके अतिरिक्त अन्य व्यक्ति उसके अंश अथवा ऋणपत्र नहीं खरीद सकते।

ब) अन्य किसी प्रकार से वह प्रस्ताव अथवा निमन्त्रण देने वाले और पाने वाले का एक घरेलू मामला हो जाता है।

3.3 प्रविरण के उद्देश्य (Objects of Prospectus)

प्रविवरण जारी करने के मुख्य उद्देश्य इस प्रकार हैं:

1. अंशों एवं ऋण-पत्रों को क्रय करने के लिए जनता को आमन्त्रित करना।

2. उन सभी शर्तों का उल्लेख करना जो जनता को अंश एवं ऋण-पत्र क्रय करने के लिए पेश की गई हों।

3. प्रविवरण द्वारा प्रस्तावित कम्पनी में विनियोग करने के लिए उत्तेजित करना।

4. यह घोषणा करना कि प्रविवरण में लिखी शर्तों के लिए संचालक उत्तरदायी है।

3.4 प्रविवरण के निर्गमन एवं रजिस्ट्रेशन से सम्बन्धित वैधानिक आवश्यकताएं (Legal Requirements Regarding Issue and Registration of Prspoectus)

कम्पनी अधिनियम में प्रविवरण के निर्गमन एवं रजिस्ट्रेशन के कुछ प्रावधान दिए गये हैं। निम्न आवश्यकताएं पूरी होने पर ही प्रविवरण का निर्गमन वैध माना जाता है:

1. एक कम्पनी के प्रविवरण का निर्गमन सामान्यत: उसके समामेलन के पश्चात् किया जाता है।

2. प्रविवरण पर तिथि अवश्य पड़ी होनी चाहिए। इसे निर्गमन की तिथि कहते हैं यदि प्रविवरण पर तारीख नहीं पड़ती है तो रजिस्ट्रेशन करने से इन्कार कर सकता है।

3. प्रविवरण के रजिस्ट्रेशन के लिए उस पर संचालकों के हस्ताक्षर होने आवश्यक हैं तथा कई महत्वपूर्ण प्रलेख संलग्न किए जाने आवश्यक हैं जैसे- विशेषज्ञों की लिखित सहमति, मुख्य-मुख्य अनुबन्धों की प्रतियां, आवेदन-पत्र की प्रति, तथा अंकेक्षकों व बैंकर्स इत्यादि की सहमति।

4. रजिस्ट्रार प्रविवरण की रजिस्ट्री करने से इन्कार कर सकता है यदि कम्पनी अधिनियम की निर्दिष्ट आवश्यकताएं पूरी न की जाएं तथा सभी आवश्यक प्रलेख साथ में न लगाएं गए हों।

5. रजिस्ट्रार को प्रविवरण की प्रतिलिपि भेजने की तिथि से 90 दिन के अन्दर जनता को प्रविवरण निर्गमित कर देना चाहिए।

3.5 प्रविवरण की विषय-सामग्री (Contents of Prospectus)

प्रविवरण कम्पनी की आधारशिला है। इसमें दिये हुए विवरण के आधार पर ही जनता अंशों अथवा ऋणपत्रों को खरीदने के लिए आकर्षित होती है। इसी के आधार पर प्रस्तावित कम्पनी के स्वस्थ अथवा अस्वस्थ होने का सामान्य रूप से ज्ञान किया जाता है इसलिए अत्यन्त आवश्यक है कि उसमें कम्पनी की स्थिति का वास्तविक चित्र हो।

कम्पनी अधिनियम की धारा 26 के अनुसार कम्पनी का यह वैधानिक कर्त्तव्य है कि वह अध्याय iii के भाग i में निर्दिष्ट 2013 के भाग (ii) के प्रावधानों के अनुपालन की आवश्यकता है। 'प्राईवेट नियोजन' से आशय कम्पनी द्वारा चयनित व्यक्तियों के समूह को (आम जनता के नियन्त्रण के अलावा अन्य तरह से) प्राइवेट नियोजन प्रस्ताव पत्र द्वारा जो कि सम्बन्धित वाक्य में निर्दिष्ट शर्ते पूरी करता है, प्रतिभूतियों के लिए प्रस्ताव करने अथवा प्रतिभूतियों में अंशदान करने के लिए नियन्त्रण से है।

धारा 26 के अनुसार यदि प्रविवरण में कोई ऐसा कथन है जो विशेषज्ञ द्वारा दिया गया है तो विशेषज्ञ की सहमति प्राप्त की जानी चाहिए तथा इस तथ्य का उल्लेख प्रविवरण में होना चाहिए। यह भी लिखा होना चाहिए कि विशेषज्ञ ने अपनी सहमति वापिस नहीं ली है। कम्पनी अधिनियम, 2013 की धारा 2(38) में 'विशेषज्ञ' शब्द को परिभाषित किया गया है। इस धारा के अनुसार विशेषज्ञ से आशय किसी इंजीनियर, मूल्यांकक, चार्टड अकाउंटेट, कम्पनी सचिव, लागत लेखापाल या अन्य किसी ऐसे व्यक्ति से है। जिसे कथन या प्रमाणपत्र जारी करने का अधिकार है। विशेषज्ञ ऐसा व्यक्ति नहीं होना चाहिए

जो कम्पनी के निर्माण, प्रवर्तन या प्रबंध से संबन्धित है अथवा उसमें हित रखता है। अन्य शब्दों में उसे कम्पनी के निर्माण अथवा प्रबंध से जुड़ा हुआ नहीं होना चाहिए।

प्रविवरण में दी जाने वाली अन्य बातें निम्नलिखित हैं:

1. कम्पनी के मुख्य उद्देश्य, तथा सीमानियम पर हस्ताक्षर करने वाले व्यक्तियों के नाम, पते तथा अन्य विवरण तथा उनके द्वारा धारण किये गये अंशों की संख्या। विभिन्न प्रकार के अंश तथा उनकी संख्या तथा विभिन्न प्रकार के अंशधारियों के हित का स्वभाव एवं उसकी सीमा। यदि शोध पूर्वाधिकार अंशों का निर्गमन किया जाना है तो उसकी संख्या एवं अन्य विवरण।

2. अन्तर्नियमों द्वारा निर्धारित संचालक बनने के लिए योग्य अंशों की संख्या। संचालकों के पारिश्रमिक के संबंध में अन्तर्नियमों की व्यवस्था चाहे संचालकों ने संचालकों, प्रबन्ध संचालकों अथवा अन्य किसी रूप से कार्य किया हो।

3. निम्नलिखित व्यक्तियों के नाम, पते तथा अन्य विवरण:

   (i) संचालकों अथवा प्रस्तावित संचालक;

   (ii) प्रबन्ध संचालक अथवा प्रस्तावित प्रबन्ध-संचालक यदि कोई हो;

   (iii) मेनेजर अथवा प्रस्तावित मेनेजर, यदि कोई हो।

   अन्तर्नियमों अथवा किसी अन्य अनुबन्ध के अधीन, उक्त व्यक्तियों की नियुक्ति उनका पारिश्रमिक तथा उनकी समय से पहले पदच्युत करने पर क्षतिपूर्ति सम्बन्धी व्यवस्थायें।

4. जबकि अंशों को जनता के सामने विक्रय के लिए प्रस्तावित किया जाता है, तो अंशों की न्यूनतम बिक्री की सीमा का विवरण। यह सीमा संचालकों द्वारा अथवा सीमानियम पर हस्ताक्षर करने वाले व्यक्तियों द्वारा उचित छानबीन के बाद निर्धारित की जानी चाहिए, और यह निम्नलिखित कार्यों के लिए (और यदि इनके किसी भाग का भुगतान अन्य किसी रीति से किया जाना है तो शेष भाग के भुगतान के लिए) पर्याप्त होनी चाहिए:

   (i) किसी सम्पत्ति के क्रय मूल्य का भुगतान करने के लिए:

   (ii) प्रारम्भिक व्यय तथा अंशों के विक्रय पर कमीशन देने के लिए;

   (iii) उक्त कार्यों के लिए उधार लिये गये धन का भुगतान करने के लिये;

   (iv) कार्यशील पूंजी के लिए।

   (v) किसी अन्य व्यय के लिए जिसके स्वभाव तथा आशय तथा अनुमानित धन का उल्लेख होना चाहिए।

   जबकि अंशों के निर्गमन के अतिरिक्त किसी अन्य रीति से धन प्राप्त करने की व्यवस्था है, तो उसी रीति का उल्लेख होना चाहिए।

5. अंशों के विक्रय सूचियों के खुले रहने का समय।

6. प्रत्येक अंश पर प्रार्थना-पत्र तथा आवण्टन पर देय धन की राशि, और यदि अंश विक्रय के दोबारा प्रस्तुत किये गये हैं तो उससे पिछले 2 वर्षो के अन्दर विक्रय किये गये अंशों के आवण्टन का विवरण।

7. ऐसे किसी अनुबन्ध का सारांश, जिसके द्वारा किसी व्यक्ति को कम्पनी के किन्हीं अंशों तथा ऋणपत्रों को खरीदने के संबंध में किसी प्रकार का विशेषाधिकार दिया गया है अथवा दिया जाना प्रस्तावित है, और उसके संबंध में समस्त महत्वपूर्ण तथ्यों का उल्लेख होना चाहिए।

   यह आवश्यकता उस समय तक लाभप्रद सिद्ध होती है जबकि अंशों का आवण्टन विशेष हित रखने वाले व्यक्तियों को किया जाता है, जैसे जबकि अंशों अथवा ऋणपत्रों का आबण्टन किसी दलाल को, उसके द्वारा जनता को विक्रय के लिए प्रस्तावित करने की दृष्टि से, किया जाता है।

8. उन अंशों तथा ऋणपत्रों की संख्या, विवरण तथा धनराशि जो कि पिछले दो वर्षों में नगदी के अतिरिक्त अन्य किसी रूप में पूर्ण पत्र अथवा आंशिक पत्र रूप में, निर्गमित किये गये हैं। इस संबंध में प्रतिफल का उल्लेख भी होना चाहिए।

9. प्रविवरण के प्रकाशन की तिथि से पहले दो वर्ष के अन्दर निर्गमित किये गये अंशों के प्रीमियम, यदि कोई हों, का विवरण।

10. जबकि अंशों अथवा ऋण-पत्रों के किसी निर्गमन का अभिगोपन किया जाता है, तो अभिगोपकों के नाम तथा संचालकों का यह विचार है कि अभिगोपकों के साधन उनके उत्तरदायित्वों को पूरा करने के लिए पर्याप्त है।

11. कम्पनी द्वारा अंशों के निर्गमन से खरीदी गई अथवा खरीदी जाने वाली सम्पत्ति के संबंध में निम्नलिखित विवरण होना चाहिए:

    (i) विक्रेताओं के नाम, पते तथा अन्य विवरण:

    (ii) विक्रेताओं को नगदी, अंशों अथवा ऋणपत्रों के रूप में दी गई अथवा दी जाने वाली धनराशि;

    (iii) खरीदी गई सम्पत्ति के हित का स्वभाव;

    (iv) पिछले दो वर्षों में सम्पत्ति के संबंध में किये गये किसी ऐसे व्यवहार का संक्षिप्त विवरण, जिसमें कि कोई विक्रेता जोकि कम्पनी का प्रवर्तक अथवा संचालक था, संम्पत्ति में कोई हित रखता था।

12. पिछले दो वर्षों में दिये गये कमीशन का विवरण।

13. प्रारम्भिक व्ययों का धन अथवा अनुमानित धन तथा वह व्यक्ति जिसके द्वारा ऐसे कोई व्यय दिये गये हैं अथवा दिये जाने हैं।

14. किसी प्रवर्तक अथवा अधिकारी का पिछले दो वर्षो में दिया जाने वाला धन अथवा लाभ, और ऐसे लाभ का प्रतिफल।

15. प्रत्येक ऐसे अनुबंध की तिथि, उसके पत्रकार तथा उसका स्वभाव जोकि किसी प्रबन्ध संचालक अथवा मेनेजर की नियुक्ति तथा पारिश्रमिक को निश्चित करने के लिए किसी भी समय किया गया है अर्थात् प्रविवरण की तिथि से दो वर्ष के अन्दर;

    अथवा उससे अधिक के अन्दर किया गया है।

16. कम्पनी के अंकेक्षकों के नाम तथा पते।

17. कम्पनी के प्रवर्तन में, अथवा कम्पनी द्वारा प्राप्त की गई अथवा प्राप्त की जाने वाली सम्पत्ति में प्रत्येक संचालक अथवा प्रवर्तक के हित यदि कोई हों, का पूर्ण विवरण।

18. यदि कम्पनी की अंश-पूंजी विभिन्न प्रकार के अंशों में विभाजित है, तो विभिन्न प्रकार के अंशों के सम्बन्ध में मताधिकार तथा पूंजी तथा लाभांश के सम्बन्ध में अधिकार।

19. जब कम्पनी के अन्तर्नियम कम्पनी के सदस्यों पर कम्पनी की सभाओं में उपस्थित होने, बोलने अथवा मत देने के अधिकार के संबंध में अथवा अंशों के हस्तांतरण करने के संबंध में, कोई प्रतिबन्ध लगाते हैं, तो ऐसे प्रतिबन्धों का स्वभाव तथा सीमा।

20. ऐसी कम्पनी की दशा में जोकि पहले से व्यापार कर रही है; वह समय जिसमें कम्पनी ने व्यापार किया है।

21. यदि कम्पनी के किन्हीं संचित कोषों अथवा लाभों को पूंजीगत कर दिया गया है, तो उनका विवरण।

22. उचित समय तथा स्थान जिसमें कम्पनी के चिट्ठे तथा लाभ-हानि खातों का निरीक्षण किया जा सकता है।

उपरोक्त लिखित बातों के अतिरिक्त प्रविवरण में निम्नलिखित रिपोटर्स का उल्लेख भी होना चाहिए।

1. कम्पनी के लाभ-हानि, संपतियों व देनदारियों तथा प्रविवरण के निर्गमन से पहले 5 वर्षों में कम्पनी द्वारा दिये गए लाभांश के सम्बन्ध में अंकेक्षकों की रिपोर्ट। अंकेक्षक की रिपोर्ट में कम्पनी की सहायक कम्पनियों के लाभ-हानि खाता का अलग से उल्लेख तथा मिश्रित (Combined) उल्लेख होना चाहिए।

2. यदि कम्पनी द्वारा किसी व्यापार का क्रय करना प्रस्तावित है तो कम्पनी के नामांकित चाटर्ड अकाउंटेट की कम्पनी की सम्पत्ति व देनदारियों तथा प्रविवरण के निर्गमन से पूर्व 5 वर्षों के लाभ-हानि के संबंध में रिपोर्ट।

3. यदि प्रतिभूतियों से प्राप्त धन का प्रयोग किसी व्यापार अथवा उसमें हित को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से क्रय करने के लिए किया जाता है तो उसके सम्बन्ध में रिपोटर्स।

प्रविरण में यह घोषणा की जाएगी कि कम्पनी अधिनियम, 2013 के सभी सम्बन्धित प्रावधानों तथा सरकार द्वारा जारी दिशा-निर्देशों का अनुपालन किया गया है। तथा उसमें किया गया कोई भी कथन कम्पनी अधिनियम, 2013 अथवा उसके अंतर्गत नियमों के विपरीत नहीं है। प्रविवरण में यह कथन भी होना चाहिए कि इसकी एक प्रति सभी आवश्यक प्रलेखों के साथ रजिस्ट्रार के पास पंजीकरण के लिये जमा कर दी गई है। रजिस्ट्रार को प्रविवरण भेजने की तिथि से 90 दिन अन्दर प्रविवरण का निर्गमन जनता को कर देना चाहिए।

3.6 प्रविवरण की रजिस्ट्री (Registration of Prospectus) :

जनता को प्रविवरण का निर्गमन करने से पहले रजिस्ट्रार ऑफ कम्पनिज के यहाँ इसका रजिस्ट्रेशन कराना आवश्यक है। धारा 27 (7) के अनुसार प्रविवरण के रजिस्ट्रेशन कराने की प्रक्रिया निम्नलिखित है:

1. प्रविवरण की एक प्रति पर प्रत्येक उस व्यक्ति के जो संचालक के रूप में नामांकित हैं अथवा

प्रस्तावित संचालक है, हस्ताक्षर होने चाहिए तथा यही प्रतिविवरण को जनता को निर्गमित करने से पूर्व कम्पनी रजिस्ट्रार के पास जमा (फाइल) की जानी चाहिए।

2. रजिस्ट्रार के पास प्रस्तुत की जाने वाली प्रति के साथ निम्नलिखित प्रलेख भी संलग्न होने चाहिए।

   (i) यदि प्रविवरण में किसी विशेषज्ञ द्वारा दी गई कोई सूचना शामिल की गई है तो उस प्रविवरण को तब तक निर्गमित नहीं किया जाएगा जब तक कि उसकी लिखित सहमति न ले ली जाए तथा उसने यह सहमति वापिस नहीं ली है।

   (ii) प्रविवरण के साथ प्रत्येक ऐसे अनुबन्ध की प्रतिलिपि भी लगनी चाहिए जो प्रबंध संचालक या प्रबंधक आदि की नियुक्ति अथवा परिश्रामिक के सम्बन्ध में है।

   (iii) प्रविवरण के निर्गमन से पूर्व दो वर्ष में किये गए महत्वपूर्ण अनुबंधों की प्रति जो व्यापार की साधारण प्रगति में नहीं किये गए हैं।

   (iv) यदि कम्पनी के अंकेक्षक या लेखापाल ने कम्पनी की स्थिति (लाभ-हानि खाता तथा सम्पत्ति और दायित्व) से सम्बन्धित रिपोर्ट में कई समायोजन किये हैं तो उनका विवरण भी कारण सहित प्रविवरण में होना चाहिए।

   (v) जिन व्यक्तियों के नाम प्रविवरण में अंकेक्षक, कानूनी सलाहकार, बैंकर्स दलाल आदि के रूप में दिये जाए, इस हैसियत से कार्य करने की लिखित सहमति प्रविवरण के साथ संलग्न करनी चाहिए।

3. प्रविवरण के साथ एक आवेदन पत्र की प्रति भी संलग्न होनी चाहिए जिसे भरकर अंशों या ऋणपत्रों को क्रय करने की प्रार्थना की जा सके।

रजिस्ट्रार प्रविवरण की रजिस्ट्री करने से इंकार कर सकता है यदि अधिनियम की निर्दिष्ट आवश्यकता पूरी न कर दी गई हो तथा आवश्यक प्रलेख संलग्न न किये गए हों।

प्रविवरण में सन्निहित अनुबन्ध की शर्तों में परिवर्तन
(Variation of terms of Contract in Prospectus)

प्रविवरण के संबंध में एक महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि कम्पनी प्रविवरण में सन्निहित किसी अनुबंध की शर्तो को, व्यापक सभा में कम्पनी की स्वीकृति के बिना किसी भी परिवर्तित नहीं कर सकती। (धारा 27)।

प्रविवरण का समाचार पत्र में विज्ञापन (Advrtisement of Prospectus in the Newspaper) :

प्रविवरण के संबंध में एक महत्वपूर्ण तथ्य यह भी है कि जब कोई प्रविवरण 'समाचार पत्र में विज्ञापन' के रूप में प्रकाशित किया जाता है तो ऐसे विज्ञापन में सीमानियम की आवश्यक बातों, अथवा हस्ताक्षर करने वालों अथवा उनके द्वारा लिये गये अंशों को निर्दिष्ट करना आवश्यक नहीं है।

3.7 प्रविवरण में असत्य कथन अथवा कपट के परिणाम
(Consequences of Untrue of Fraudulent Statements in Prospectus)

जनता प्रविवरण में सन्निहित कथनों के आधार पर ही कम्पनियों के अंशों तथा ऋणपत्रों के खरीदने में अपने धन का विनियोग करती है। असत्य अथवा कपटमय कथनों के आधार पर ही प्रवर्तक जनता

के साथ कपट कर सकते हैं। जो व्यक्ति कम्पनी के अंशधारी बनना चाहते हैं उन्हें कम्पनी सम्बन्ध में पूरी और सही सूचना दी जानी चाहिए। प्रविवरण की लाभ-सामग्री लिखते समय 'सुनहरे नियम' (Golden Rule) को अवश्य ध्यान में रखना चाहिए। इस नियम के अनुसार प्रविवरण निर्गमन करने वालों को प्रत्येक विषय सही एवं उचित ढंग से लिखना चाहिए। अत: प्रविवरण निर्गमन करने वालों की यह जिम्मेदारी है कि प्रविवरण में किसी महत्वपूर्ण बात को न छिपाया जाए। कोई असत्य कथन या मिथ्या वर्णन प्रकाशित न किया जाए जिससे विनियोक्ता को धोखा न हो। वैधानिक रूप से जो सूचनाएं संभावित विनियोक्ताओं को दी जानी चाहिए उनमें से यदि किसी को भी प्रविवरण में छुपाया जाता अथवा उनका गलत रूप में दिखाया जाता है तो इसे प्रविवरण में असत्य कथन या मिथ्या वर्णन कहा जाता है।

"असत्य कथन" अथवा मिथ्या कथन अथवा मिथ्या वर्णन
(Untrue Statement or Misstatement or Mis-representation) :

कम्पनी अधिनियम के अनुसार "असत्य कथन" अग्रलिखित रूपों में हो सकता है:

1. प्रविवरण में सन्निहित कोई कथन असत्य माना जायेगा यदि उस कथन के स्वरूप तथा संदर्भ भ्रमात्मक है जिसमें वह प्रविवरण में सन्निहित किया गया है; तथा

2. जबकि प्रविवरण में किसी भी विषय की कोई भूल (Omission) भ्रम में डालने वाली मानी जाती है, तो वह उस विषय के सम्बन्ध में एक असत्य कथन माना जायेगा।

इस प्रकार "असत्य कथन" का आशय व्यापक है। इसका आशय असत्य कथन से ही नहीं है, बल्कि किसी ऐसी भूल से भी है जो कि तथ्यों के संबंध में जनता को भ्रम में डाल सकती है। इसका आशय किसी भी ऐसे कथन अथवा भूल से है जो कि जनता के मस्तिष्क पर वास्तविक तथ्यों के सम्बन्ध में एक असत्य प्रभाव डाल सकती हैं। किसी महत्वपूर्ण तथ्यों को छिपाना (Concealment) भी इसी श्रेणी में है।

अधिकार एवं दायित्व (Rights and Liabilities) :

यदि प्रविवरण में असत्य कथन होते हैं तो उसके फलस्वरूप कुछ अधिकार एवं दायित्व उत्पन्न हो जाते हैं। ऐसे अधिकारों एवं दायित्वों को प्रमुख रूप से दो श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है:

1. कम्पनी के विरुद्ध अंशधारियों के अधिकार तथा

2. संचालकों, प्रवर्तकों तथा मिथ्या कथन के लिए दायी अन्य व्यक्तियों के विरुद्ध अंशधारियों के अधिकार।

कम्पनी के विरुद्ध अधिकार (Rights against the Company)

"अंशों के खरीदने का अनुबन्ध उन्हीं नियमों द्वारा शासित होता है जिस प्रकार अन्य अनुबन्ध।" फलस्वरूप प्रविवरण में असत्य कथनों के लिए अंशधारियों के कम्पनी के विरुद्ध निम्नलिखित अधि कार हो जाते हैं:

1. अनुबन्ध का परित्याग (Recession of Contract) :

प्रविवरण में किये गये कथन कम्पनी द्वारा किये वर्णन होते हैं, और जब उसमें मिथ्या वर्णन होते हैं, तो आबण्टी को अनुबंध का परित्याग करने तथा अपने प्रदत्त धन को वापिस पाने का अधिकार है। सामान्य अनुबन्धों से सम्बन्धित राजनियम के अनुसार अंशों के खरीदने का अनुबन्ध व्यर्थनीय है, यदि

वह मिथ्या वर्णन द्वारा प्रेरित किया गया था, चाहे ऐसा मिथ्या वर्णन अज्ञानवश है अथवा कपटमय है यह महत्वपूर्ण है कि केवल मूल क्रेताओं को ही यह अधिकार प्राप्त है। यह अधिकार एक क्रेता को नहीं जिसने कि अंशों को किसी अंशधारी से खरीदा है।

विभिन्न निर्णय किए हुये मामलों के आधार पर अनुबन्ध को परित्याग करने का अधिकार निर्दिष्ट शर्तों के अधीन ही प्राप्त है:

1. कथन, जिसने अंशों को खरीदने के लिए प्रेरित किया है, असत्य है (प्रविवरण को सम्पूर्ण रूप में देखते हुए) यदि अनेक कथनों से किसी के मस्तिष्क पर गलत प्रभाव हो जाता है, तो वह कम असत्य नहीं है यद्यपि प्रत्येक कथन को पृथक्-पृथक् लेते हुए किसी विशेष कथन को असत्य प्रमाणित करना कठिन है। इसलिए प्रविवरण को सम्पूर्ण रूप में देखना ही पर्याप्त है।
2. ऐसा कथन तथ्य सम्बन्धी होना चाहिए, केवल अनुमति प्रदर्शन नहीं।
3. ऐसा कथन महत्वपूर्ण होना चाहिए, अर्थात् ऐसे स्वभाव का होना चाहिए जो कि किसी व्यक्ति के अभिप्राय को प्रभावित कर सकता है।
4. ऐसे कथन के विश्वास के आधार पर अंशधारी अंश खरीदने के लिए प्रभावित हुआ था। निम्नलिखित दशाओं में अनुबंध को परित्याग करने के अधिकार का अन्त हो जाता है-
   (i) यदि असत्य कथन का ज्ञान होने के बाद अंशधारी यथोचित समय के भीतर कार्यवाही नहीं करता।
   (ii) यदि असत्य कथन का ज्ञान होने के बाद वह गर्भित रूप से ऐसे व्यर्थनीय अनुबन्ध की पुष्टि कर देता है, जैसे, वह अपने अंशों को बेचने का प्रयत्न करे, मांगों का भुगतान करें, लाभांश प्राप्त करें अथवा ऐसे अंशों के सम्बन्ध में किसी अन्य अधिकार का प्रयोग करें।
   (iii) यदि अनुबन्ध निरस्त करने से पहले ही कम्पनी का समापन हो जाता है।

2. कपट के लिए हर्जाना (Damages for Fraud) :

यदि वह यह प्रमाणित कर सकता है कि असत्य कथन जानबूझकर अथवा लापरवाही से किया गया था (अर्थात् कपटमय है), तो उसे केवल अनुबन्ध को परित्याग करने का अधिकार ही नहीं हो जाता बल्कि कपट के आधार पर कम्पनी से हर्जाना प्राप्त करने का अधिकार भी हो जाता है। यहां एक महत्वपूर्ण बात यह है कि कम्पनी के विरूद्ध हर्जाने का अधिकार वह अनुबन्ध को निरस्त करने के बाद ही प्रयोग में ला सकता है। आबण्टकी अंशों को धारण करते हुए कम्पनी से हर्जाना प्राप्त नहीं कर सकता। इस सम्बन्ध में 'लार्ड केर्न्स' का कथन महत्वपूर्ण है। उनके अनुसार, "हर्जाना प्राप्त करने का अधिकार वास्तव में उस अनुबन्ध में असंगत है जोकि किसी व्यक्ति ने कम्पनी के साथ एक अंशधारी के रूप में किया है और उस व्यक्ति को अंशों के धारण करते हुए हर्जाना प्राप्त करने का अधिकार देना उसको एक ही साथ स्वीकृति करने तथा अस्वीकृत करने का अधिकार देना है।" यह न्यायसंगत नहीं है।

संचालकों, प्रवर्तकों तथा मिथ्या कथन के लिए दायी अन्य व्यक्तियों के विरूद्ध अधिकार (Rights against Directors, Promoters and others) :

यह स्पष्ट किया जा चुका है कि असत्य अथवा कपटमय कथनों के आधार पर ही प्रवर्तक जनता के साथ कपट कर सकते हैं। इनको रोकने के लिए कम्पनी अधिनियम के अधीन उन व्यक्तियों के कुछ विशेष दायित्व है जो कि प्रविवरण के निर्गमन के लिए दायी है। कम्पनी अधिनियम के अधीन

उनके दो प्रकार के दायित्व हैं: नागरिक दायित्व तथा दण्डनीय दायित्व।

1. नागरिक दायित्व-क्षतिपूर्ति (Civil Liability Compensation) :

जब कोई अंशधारी कम्पनी के विरूद्ध अनुबंध को परित्याग करने के अपने अधिकार को खो देता है, अथवा कपट के आधार पर हर्जाना प्राप्त करने के अधिकार को स्थापित करने में उसे कोई कठिनाई अनुभव होती है, तो वह कम्पनी अधिनियम के अधीन क्षतिपूर्ति प्राप्त करने के अपने वैधानिक अधिकारों का प्रयोग कर सकता है। इस प्रकार यहां यह महत्वपूर्ण है कि ऐसे अधिकार का प्रयोग अनुबंध का परित्याग किये बिना ही किया जा सकता है। यह महत्वपूर्ण है कि अंशधारियों को ऐसा अधिकार प्राप्त है चाहे मिथ्या कथन अज्ञानवश है अथवा कपटमय है।

कम्पनी अधिनियम के अनुसार, निम्नलिखित व्यक्ति प्रत्येक ऐसे व्यक्ति के लिए जिसने प्रविवरण में विश्वास के आधार पर कम्पनी के अंश अथवा ऋणपत्र खरीदे हैं, क्षतिपूर्ण के लिये दायी है, यदि प्रविवरण में सन्निहित किसी असत्य कथन (चाहे वह अज्ञानवश है अथवा कपटमय) के कारण उसे कोई हानि हुई है:

(i) प्रत्येक व्यक्ति जो कि प्रविवरण के निर्गमन के समय कम्पनी का संचालक है;

(ii) प्रत्येक व्यक्ति जिसने अपना नाम प्रविवरण में संचालक के रूप में उल्लिखित किये जाने का अधिकार दे दिया है;

(iii) प्रत्येक व्यक्ति जो कम्पनी का प्रवर्तक है; तथा

(iv) प्रत्येक व्यक्ति जिसने प्रविवरण के निर्गमन का अधिकार दिया है।

परन्तु उपर्युक्त कोई भी व्यक्ति क्षतिपूर्ति के लिए दायी न होगा यदि वह निम्नलिखित प्रमाणित कर देता है:

1. संचालक होने के लिए सहमत होने के पश्चात् उसने अपनी सहमति प्रविवरण के निर्गमन होने से पहले ही वापिस ले ली थी, और वह उसके अधिकार अथवा सहमति के बिना निर्गमन किया गया था;

2. प्रविवरण उसकी जानकारी अथवा सहमति के बिना निर्गमित किया गया था, तथा उसके निर्गमन की जानकारी होने पर उसी समय यथोचित सार्वजनिक सूचना दे दी कि वह उसकी जानकारी अथवा सहमति के बिना निर्गमित किया गया था।

3. प्रविवरण के निर्गमन के पश्चात् तथा उसके अधीन आबण्टन होने से पहले, उसने सन्निहित असत्य कथन की जानकारी होने पर, प्रविवरण के लिए अपनी सहमति को वापिस ले लिया और ऐसी वापसी तथा उसके कारण की यथोचित सार्वजनिक सूचना दे दी; अथवा

4. प्रत्येक असत्य कथन के सम्बन्ध में कथन को सत्य समझने के लिए उसके पास यथोचित आधार था, तथा अंशों अथवा ऋणपत्रों के आबण्टन के समय तक उसे ऐसा विश्वास था कि कथन सत्य था; तथा

5. जब असत्य कथन विशेषज्ञ के कथन पर आधारित था, जिसके सम्बन्ध में उसे यह समझने का उचित आधार था कि वह वैधानिक रूप में योग्य व्यक्ति था और उसने अपनी सहमति दे दी थी और उसको वापिस न ली थी, और प्रविवरण के निर्गमन के समय तक वह ऐसा ही विश्वास करता

था; तथा

6. असत्य कथन यदि वह किसी अधिकारी व्यक्ति द्वारा गया है अथवा किसी अधिकृत प्रपत्र का सारांश अथवा प्रतिलिपि है, तो वह उसकी सत्य तथा उचित प्रतिलिपि है।

2. दण्डनीय दायित्व (Criminal Liability)

प्रविवरण में मिथ्या वर्णन के लिये नागरिक दायित्व के अतिरिक्त कम्पनी अधिनियम, 2013 की धारा 34 के अन्तर्गत दण्डनीय दायित्व का भी प्रावधान है। इस धारा के अनुसार यदि प्रविवरण में असत्य कथन है तो प्रत्येक व्यक्ति जिसने प्रविवरण का निर्गमन अधिकृत किया है अधिनियम की धारा 447 के अन्तर्गत दण्डनीय है, जिसमें कपट के लिये दण्ड का प्रावधान है। कोई भी व्यक्ति जो कपट का दोषी पाया जाता है उसे निम्नलिखित दण्ड दिया जा सकता है:

(i) कम से कम 6 महीने की अवधि का कारावास परन्तु 10 वर्ष तक बढ़ाया जा सकेगा, या

(ii) जुर्माना जो कपट की राशि से कम नहीं होगा परन्तु जिसे कपट लिप्त राशि के तीन गुणा बढ़ाया जा सकेगा, अथवा

(iii) दोनों, कारावास तथा जुर्माना।

3. साराँश (Summary)

इस प्रकार हमने जाना कि कोई भी प्रपत्र जिसके द्वारा जनता को आमन्त्रित किया जाता है कि वह कम्पनी में अंश ले सके या ऋण-पत्र क्रय कर सके, प्रविवरण कहलाता है। वास्तव में यह जनता द्वारा प्रस्ताव करने के लिए कम्पनी द्वारा दिया गया एक निमन्त्रण है। यह आमन्त्रण मौखिक न होकर लिखित होना चाहिए। प्रविवरण का मुख्य उद्देश्य जनता को कम्पनी की योजनाओं की जानकारी देना है तथा यह बतलाना है कि एकत्र पूंजी का उपयोग किन कार्यों के लिए किया जाएगा। प्रविवरण में कम्पनी की स्थिति का वास्तविक चित्र होना चाहिए। प्रविवरण तैयार करते समय उसमें सभी महत्वपूर्ण तथ्यों को पूरी ईमानदारी से प्रस्तुत किया जाना चाहिए। यदि प्रविवरण में वास्तविक तथ्यों का मिथ्या वर्णन किया गया है तो उसे भ्रामक प्रविवरण कहते हैं। यदि प्रविरिण में असत्य कथन दिए गए हैं तो पीड़ित पक्षकार को कई अधिकार प्राप्त होते हैं।

5. प्रस्तावित पुस्तकें

			(Publishers)
1.	Company Law & Auditing	- Dr. Ashok Sharma	VK Global Publications
2.	Company Law & Auditing	- Dr. R.L. Nolakha	Mahavir Publications
3.	Company Law & Secretarial Practice	- Dr. S. C. Aggarwal	R. Chand and Company
4.	Modern Indian Company Law	- M.C. Kuchhal	Vikas Publishing House

6. नमूने के लिए प्रश्न

1. कम्पनी प्रविवरण की परिभाषा दीजिए तथा इसके स्वभाव की विवेचना कीजिये। क्या प्रविवरण निर्गमित किया जाना अनिवार्य है? प्रविवरण की आवश्यक बातों को संक्षेप में लिखिए।

Define Company prospectus and discuss its nature. Is the issue of prospectus necessary? State its contents briefly.

2. प्रविवरण के असत्य कथनों (भूल, मिथ्या वर्णन तथा कपट) के परिणामों की व्याख्या कीजिए। संचालकों का ऐसे कथनों के सम्बन्ध में क्या दायित्व है?

   Discuss the consequence of nature statements ommission, misrepresentsation and fraud) Prospectus. Bring out the liabilities of directors for such statements.

3. प्रविवरण क्या होता है? क्या कम्पनी के लिए प्रविवरण निर्गमित करना अनिवार्य होता है? प्रविवरण के मिथ्या कथन, भूल तथा छुपाव का प्रभाव होता है?

   What is prospectus? Is it compulsory for a company to issue prospectus? What is the effect of misrepresentation, Ommission and concealment in prospectus?

4. प्रविवरण को परिभाषित कीजिए और इसके उद्देश्यों एवं आवश्यकता का वर्णन कीजिए। किन परिस्थितियों में कम्पनी को प्रविवरण निर्गमन की आवश्यकता नहीं होती।

   Define prospectus and explain its objects and need. Under what circumstances company need not to issue prospectus.

5. संक्षिप्त टिप्पणियां लिखिए:

   (i) प्रविवरण की रजिस्ट्री (Registration of Prospectus)

   (ii) प्रविवरण की विषय–सामग्री (Contents of Prospectus)

B.Com - II

Subject : Company Law & Auditing **Writer : Dr. Jagdish Gupta**

Lesson No : 4 **Updated By : Ashu K. Garg**

ऋण लेने के अधिकार, बन्धक तथा प्रभार; सभाएँ तथा प्रस्ताव
(Borrowing Powers; Mortgages and Charges; Meeting and Resolutions)

अध्याय की रूपरेखा (Structure of the Lesson)

1. भूमिका (Introduction)
2. अध्याय के उद्देश्य (Objectives of Chapter)
3. विषय सामग्री का प्रस्तुतिकरण (Presentation of Contents)
   3.1 ऋण लेने के अधिकार का अर्थ
      3.1.1 ऋण लेने का अधिकार
      3.1.2 अधिकारों के बाहर ऋण
      3.1.3 ऋण लेने की विधियाँ
   3.2 ऋण–पत्र का अर्थ
      3.2.1 ऋण–पत्र एवं स्कन्ध में अन्तर
      3.2.2 अंशधारी तथा ऋणपत्रधारी में अन्तर
      3.2.3 ऋणपत्रों के प्रकार
      3.2.4 ऋणपत्रधारियों का रजिस्टर
      3.2.5 ऋण पत्रों के साथ 'समरूप' नियम
      3.2.6 ऋणपत्र धारियों के उपचार
   3.3 प्रभाव का अर्थ व प्रकार
      3.3.1 स्थायी और चल प्रभाव में अन्तर
   3.4 बन्धक का अर्थ
      3.4.1 प्रभार व बंधक में अन्तर
   3.5 प्रभाव के सम्बन्ध में अन्तर
   3.6 प्रभार के रजिस्ट्रेशन के सम्बन्ध में कम्पनी के कर्त्तव्य
   3.7 सभाएँ तथा प्रस्ताव का अर्थ
      3.7.1 कम्पनी की सभाओं के प्रकार
   3.8 वैध सभा की आवश्यकताएँ
   3.9 प्रस्ताव
      3.9.1 साधारण प्रस्ताव
      3.9.2 विशेष प्रस्ताव
      3.9.3 विशेष सूचना की आवश्यकता वाले प्रस्ताव
4. साराँश (Summary)
5. प्रस्तावित पुस्तकें (Suggested Readings)
6. नमूने के लिये प्रश्न (Sample Question)

1. परिचय (Introduction) :

कम्पनी अधिनियम कम्पनियों को ऋण लेने के लिए अधिकृत नहीं करता है परन्तु व्यापारिक कम्पनियों को ऋण लेने का गर्भित अधिकार प्राप्त है और प्राप्त ऋण के लिए कम्पनी अपनी सम्पत्तियों की प्रतिभूति देने का अधिकार रखती है।

किसी निश्चित विषय पर निर्णय लेने के लिए किसी निश्चित स्थान पर पूर्व सूचना के अनुसार कम्पनी के सदस्य, संचालक लेनदार तथा ऋणदाता सभा के लिए एकत्रित होते हैं। सभा में विचाराधीन सुझाव जब सदस्यों के आवश्यक बहुमत द्वारा स्वीकार कर लिए जाता है तो वह एक प्रस्ताव बन जाता है।

2. अध्याय के उद्देश्य (Objectives of Chapter)

अध्याय के उद्देश्य आपको निम्न विषयों की जानकारी देना है:

1. कम्पनियों को ऋण लेने के अधिकार के बारे में;
2. ऋण-पत्र का अर्थ, प्रकार, अंशधारी तथा ऋण-पत्रधारी में अन्तर के बारे में जानकारी;
3. प्रभार व बन्धक के अर्थ व प्रकार;
4. सभाओं के प्रकार के बारे में;
5. प्रस्ताव के अर्थ व प्रकार की जानकारी।

3. विषय-सामग्री का प्रस्तुतीकरण (Presentation of Contents) :

अध्याय की विषय-सामग्री का प्रस्तुतीकरण (Presentation of Contents) :

3.1 ऋण लेने का अधिकार का अर्थ :

कम्पनियों को अपने व्यापार के सम्बन्ध में समय-समय पर धन की आवश्यकता पड़ती रहती है। कुछ सीमा तक इस आवश्यकता की पूर्ति अंशों के निर्गमन द्वारा की जाती हैं और शेष के लिए कम्पनी को सार्वजनिक ऋण लेने का गर्भित अधिकार है। व्यापारिक कम्पनियों के द्वारा ऋण लेने के अधिकारों का वर्णन जनरल ऑक्शन एस्टेट कम्पनी बनाम स्मिथ' के मामले में दिया गया है। कम्पनियां अपने पार्षद सीमा नियम के द्वारा साधारणतया इस अधिकार का प्रयोग करती है और ऋण लेने के अधिकार को किस प्रकार प्रयोग किया जाए यह अन्तर्नियमों में दिया जाता है। जिस कम्पनी के पास ऋण लेने का अधिकार नहीं होता, वह पार्षद सीमा नियम के उद्देश्य वाक्य में परिवर्तन करके ही इस प्रकार का अधिकार प्राप्त कर सकती है।

3.1.1 ऋण लेने के अधिकार

1. **संचालक मण्डल द्वारा ऋण लेने के अधिकार का प्रयोग करना** - कम्पनी के ऋण लेने का अधिकार ऋण पत्रों को छोड़कर अन्य दशाओं में केवल संचालक मण्डल को है।
2. **प्रतिनिधि को ऋण लेने के लिए अधिकार का हस्तांतरण** - संचालक मण्डल अपनी सभा में प्रस्ताव पास करके अपने इस अधिकार को अपने प्रतिनिधि के रूप में संचालक, मैनेजर या कम्पनी के किसी प्रमुख अफसर को हस्तांतरित कर सकते हैं। इस प्रस्ताव में उन सभी का उल्लेख अवश्य होना चाहिए जिस तक वे ऋण ले सकते हैं कम्पनी अपनी साधारण सभा द्वारा उपर्युक्त संचालक मण्डल के ऋण लेने के अधिकार पर प्रतिबन्ध लगा सकती है और शर्तें निर्धारित कर सकती है।

3. **प्रारम्भ करने से पहले ऋण लेने का अधिकार न होना** - किसी भी पब्लिक कम्पनी को व्यापार प्रारम्भ करने का प्रमाण पत्र मिलने से पहले ऋण पत्रों को निर्गमित करने का अधिकार नहीं है। परन्तु एक प्राईवेट कम्पनी समामेलन का प्रमाण-पत्र प्राप्त करने के बाद ऋण पत्र निर्गमित कर सकती है।

4. **ऋण की राशि चुकता पूंजी एवं स्वतंत्र संचय से अधिक न होना**- कम्पनी अधिनियम के अनुसार संचालकों द्वारा लिए जाने वाला ऋण कम्पनी की चुकता पूंजी तथा स्वतंत्र संचय (Paid up Capital & Free Reserve) के जोड़ से अधिक नहीं होना चाहिए। यदि ऋण ली जाने वाली राशि और पहले से ऋण ली हुई राशियों को जोड़ (व्यापार की साधारण दशा में बैंकों से लिए गए अस्थाई ऋणों को छोड़कर) कम्पनी की चुकता पूंजी और स्वतंत्र संचय के जोड़ से अधिक होता है तो इस आधिक्य के लिए कम्पनी की साधारण सभा में स्वीकृति लेना आवश्यक है। बिना इस प्रकार की पंजीकृत के इस आधिक्य की राशि का ऋण नहीं लिया जा सकता है। प्रस्ताव में उस राशि का उल्लेख अवश्य होना चाहिए जिस तक संचालक मण्डल ऋण ले सकते हैं।

5. **ऋणों का अवैध होना**- उपर्युक्त वर्णित सीमाओं से बाहर लिए गए ऋण अवैध होते हैं। जब तक ऋण देने वाला साबित न कर दें कि उसने वह ऋण अच्छी भावना से तथा यह जाने हुए कि ऐसा करने से कम्पनी के ऋण लेने के अधिकार की सीमा का उल्लंघन होता है, दिया है।

6. **बैंकिंग कम्पनी के निक्षेपों को इस कम्पनी के ऋण न जमा करना**- एक बैंकिंग कम्पनी अपने साधारण व्यवसाय की दशा में जनता से मुद्रा के रूप में जो निक्षेप प्राप्त करती है जिसका भुगतान माँग पर या अन्य प्रकार किया जाना हो और निक्षेपों को चैक, ड्राफ्ट, आर्डर या अन्य प्रकार से निकाले जाने की व्यवस्था हो तो इन्हें कम्पनी द्वारा लिया हुआ ऋण नहीं माना जाता है।

3.1.2 अधिकारों के बाहर ऋण (Ultra Vires Loans)

1. यदि कोई कम्पनी अपने पार्षद सीमा नियम या अन्तर्नियमों में दिए हुए अधिकारों से अधिक राशि ऋण के रूप में लेती है तो ऋण लेने की शक्ति से जितना क्रय कम्पनी द्वारा अधिक लिया गया है वह व्यर्थ (Void) होता है, इस प्रकार के ऋण लेने को अधिकारों के बाहर (Ultra Virres) ऋण लेना कहते हैं। इस प्रकार के ऋण के लिये दी गई जमानत प्रभावहीन तथा व्यर्थ होती है और किसी भी पुष्टिकरण द्वारा ऋण को कानूनी नहीं बनाया जा सकता।

2. कम्पनी द्वारा लिया ऋण अन्तर्नियमों की सीमा के बाहर है, पर पार्षद सीमा नियम की सीमा के अन्दर है तो एक विशेष प्रस्ताव द्वारा अन्तर्नियमों को इस प्रकार बदला जा सकता है कि वह अधिकार उनकी सीमा के अन्तर्गत आ जाए।

   प्रत्येक कम्पनी को उधार लेने तथा कम्पनी की सम्पत्ति को कम्पनी के व्यापार के लिए गिरवी रखने का अधिकार है।

कम्पनी के अधिकार के बाहर ऋण देने वाले व्यक्ति के अधिकार- कम्पनी अपने अधिकारों से बाहर जो भी ऋण किसी अन्य व्यक्ति से लेती है, वह यद्यपि व्यर्थ होता है परन्तु फिर भी ऋणदाता को निम्नांकित अधिकार प्राप्त हैं-

1. **कम्पनी के विरूद्ध अधिकार**- (अ) यदि ऋण देने वाला कम्पनी के अधिकारों से बाहर दी हुई इस अधिक राशि (जो नकदी में या सम्पत्तियों के रूप में हो सकती हैं) को कम्पनी में ढूंढ

सकता है या पहचान सकता है और खोज आदेश प्राप्त करके उस सम्पत्ति या नकदी को प्राप्त कर सकता है क्योंकि कम्पनी का इस राशि के ऊपर कोई अधिकार नहीं रहता है। (ब) वह इस प्रकार का आदेश कम्पनी के विरूद्ध ले सकता है कि कम्पनी इस राशि का प्रयोग न कर सके। (स) यदि कम्पनी ने यह राशि अपने लेनदारों को दी है तो यह व्यक्ति उन लेनदारों के सभी अधिकार प्राप्त कर लेता है जिन्हें कम्पनी ने अधिकारों से बाहर ली गई राशि कानूनी तौर पर दी थी।

2. **संचालकों के विरूद्ध अधिकार**- कोई भी ऋण जो कम्पनी के अधिकारों के अन्तर्गत है, परन्तु 'संचालकों के अधिकारों के बाहर है तो उसे संचालकों के लिए अधिकारों के बाहर' कहते हैं। यदि ऐसे ऋण की पुष्टि हो जाती है तो कम्पनी उस राशि के भुगतान के लिए बाध्य होगी। जब कम्पनी द्वारा ऐसे ऋण की पुष्टि नहीं की जाती तो आन्तरिक प्रबन्ध का सिद्धान्त (Doctrine of Indoor Management) तथा एजेन्सी के सामान्य सिद्धान्त ऐसे ऋणदाता के अधिकार का आश्वासन भंग करने के लिए संचालकों पर व्यक्तिगत रूप से व्यक्तिगत रूप से वाद प्रस्तुत कर सकता है जिन्होंने अधिकारों के बाहर ऋण लिया है।

3.1.3 ऋण लेने की विधियां (Methods of Borrowing)

यदि कम्पनी ऋण लेने के लिए अधिकृत हो, तो निम्नलिखित विधियों द्वारा ऋण ले सकती है-

1. बैंक अधिविकर्ण द्वारा (By Bank Overdraft)।
2. विनिमय पत्र, हुण्डी या प्रतिज्ञा-पत्र के निर्गमन द्वारा।
3. साधारण ऋण द्वारा।
4. ऋणपत्रों के निर्गमन द्वारा।
5. रहन के द्वारा (By Pledge)।
6. कम्पनी की स्थाई या अस्थाई सम्पत्तियों को प्रभार या बंधक के रूप में रखकर।
7. जनता के निक्षेप प्राप्त करके।
8. बैंक से नकद उधार लेकर (By Cash Credit)।

3.2 ऋण-पत्र का अर्थ

अर्थ एवं परिभाषा (Meaning & Definition)

'ऋण-पत्र' शब्द लैटिन भाषा के डैबेरे (Debere) शब्द से लिया गया है जिसका अर्थ ऋणदायी होता है। एक ऋणपत्र ऋण को स्वीकार करने का प्रमाण पत्र है जिसे कम्पनी की मुहर के अधीन दिया जाता है। यह एक निश्चित पर मूल राशि लौटाने का अनुबंध है। इसी राशि पर एक निश्चित दर से उस समय तक ब्याज दिया जाता है जब तक कि मूल राशि का भुगतान न हो जाए।

कम्पनी अधिनियम, 2013 की धारा 2 (30) के अनुसार, "ऋण-पत्र में ऋणपत्र-स्टॉक, बॉण्ड तथा कम्पनी की अन्य प्रतिभूतियां सम्मिलित हैं चाहे वे कम्पनी की सम्पत्तियों पर प्रभाव उत्पन्न करें या न करें" ('Debentures includes debenture stock, bonds and any other securities of a company whether constituting a charge on the assets of the company or not.') [Sec. 2 (30)].

टोफान (Tophan) के अनुसार, "ऋणपत्र एक प्रपत्र है जोकि कम्पनी द्वारा ऋण के साक्ष्य (evidence) के रूप में धारक को दिया जाता है। साधारणतया वह ऋण की दशा में होता है और अधिकतर प्रभार द्वारा सुरक्षित होता है।"

(Debenture is a document given by a company as evidence of a debt to the holder usually arising out of a loan and most commonly secured by charge. Tophan).

कम्पनी जब ऋण लेती है तो इस ऋण की स्वीकृति के लिए प्रमाणपत्र देती है जिसे ऋण पत्र कहा जाता है चूंकि कम्पनी एक बनावटी होती है, अत: वह अपनी स्वीकृति इस पत्र पर सार्वमुद्रा लगाकर देती है। वास्तव में ऋणपत्र, कम्पनी (जो एक देनदार की दशा में होती है) और लेनदार में एक अनुबन्ध है जिसके अनुसार कम्पनी लिए हुए ऋण का ब्याज, सहित भुगतान करने का वायदा करती है।

ऋणपत्र तथा स्कन्ध (Debenture and Debenture Stock)

भारतीय कम्पनीज अधिनियम की धारा 2(30) में ऋणपत्र की परिभाषा में स्टॉकों ऋणपत्रों को सम्मिलित किया गया है। परन्तु इनमें भी उसी प्रकार अन्तर है जिस प्रकार अंश और स्टॉक (Share and Stock) में है।

Debenture Stock- यदि एक ऋण-पत्रधारी के पास एक से अधिक ऋणपत्र हैं और वह इन सबके लिए एक ऋणपत्र लेता है जिसे ऋणपत्र स्टॉक कहा जाता है। यह केवल पूर्ण चुकता (fully paid up) ऋणपत्रों के बदले में ही दिया जाता है।

3.2.1 ऋणपत्रों एवं स्कन्ध में अन्तर (Difference between Debenture & Debenture Stock)

	अन्तर का आधार (Basis of Difference)	ऋणपत्र (Debenture)	स्कन्ध (Debenture Stock)
1.	अर्थ (Meaning)	ऋणपत्र कम्पनी द्वारा लिए गए ऋण के प्रमाण का प्रलेख है। ऋणपत्र का अंकित मूल्य निश्चित तथा बराबर की राशि में होता है।	ऋणपत्र स्टॉक स्वयं ऋण है जो किसी भी राशि में विभक्त किया जा सकता है।
2.	हस्तांतरण (Transfer)	ऋणपत्रों का हस्तांतरण एक सम्पूर्ण ईकाई में ही किया जा सकता है, क्योंकि इसका अंकित मूल्य विभाज्य नहीं है।	इनका कोई भी अंकित मूल्य नहीं होता, अत: इनका हस्तांतरण किसी भी राशि में किया जा सकता है।
3.	पूर्णचुकता (fully paid up)	ऋणपत्रों की राशि किश्तों में चुकाई जा सकती है। इनका पूर्णचुकता होना आवश्यक नहीं है।	ऋणपत्र स्टॉक सदैव पूर्णत: चुकता होते हैं।

3.2.2 अंशधारी तथा ऋणपत्रधारी में अंतर

अन्तर का आधार (Basis of Difference)	अंशधारी	ऋणपत्रधारी
मत देने का अधिकार	ये कम्पनी के सदस्य होते हैं। इन्हें कम्पनी को सभाओं में वोट देने का अधिकार है।	वे वास्तव में कम्पनी के लेनदार होते हैं। इन्हें कम्पनी की सभाओं में धारा 117 के अनुसार वोट देने का अधिकार नहीं है
लाभांश या ब्याज दर	इन्हें कम्पनी में लाभांश पाने का अधिकार होता है।	इन्हें कम्पनी में अपने दिए हुए ऋण पर ब्याज पाने का अधिकार होता है।
धन की वापसी	इनके द्वारा पूंजी के रूप में कम्पनी को दिया हुआ धन केवल कम्पनी के समापन की दशा में वापस किया जा सकता है। शोधनीय पूर्वाधिकार अंशों को छोड़कर।	इनके द्वारा दिया हुआ धन निश्चित अवधि की समाप्ति पर वापिस किया जा सकता है।
प्राथमिक अधिकार	कम्पनी के समापन के समय ऋणपत्र धारियों को अपना धन लेने का इनसे पहले अधिकार है।	कम्पनी के समापन के समय अंशाधारियों को ऋणधारियों से पहले अपना धन लेने का अधिकार नहीं है।
पूंजी व ऋण	इनके द्वारा दिया धन कम्पनी के पास पूंजी के रूप में होता है।	इनके द्वारा दिया हुआ धन कम्पनी के लिए ऋण के रूप में होता है।

3.2.3 ऋणपत्रों के प्रकार (Type of Debenture)

1. **सुरक्षित अथवा बंधक ऋण (Secured and Mortgaged Debenture) :** पत्रों के लिए कम्पनी की सम्पत्तियों को भार या बंधक किया जाता है, वे बंधक ऋणपत्र कहलाते हैं। यदि देनदानों का भुगतान कम्पनी नहीं करती तो वे अपनी क्षतिपूर्ति बंधक रखी हुई सम्पत्ति से कर सकते हैं।

2. **साधारण अथवा असुरक्षित ऋणपत्र (Simple or Unsecured Debentures) :** इन ऋणपत्रधारियों को कम्पनी कोई भी प्रतिभूति (security) ऋण व ब्याज के भुगतान के लिए नहीं लेती है। कम्पनी के समापन के समय ये साधारण लेनदार की तरह माने जाते हैं ये ऋणपत्र केवल इस बात का प्रमाण हैं कि कम्पनी इनमें अंकित ऋण की देनदार है।

3. **वाहक ऋणपत्र (Bearer Debentures) :** जिन ऋणपत्रों का हस्तांतरण केवल सुपुर्दगी द्वारा होता है, वे वाहक ऋण पत्र कहे जाते हैं। इनका ब्याज तथा इनकी मूल राशि का भुगतान इनके वाहकों को किया जाता है। इनके हस्तांतरण पर न तो कोई वैधानिक विधि अपनाई जाती है और न स्टाम्प शुल्क ही देना पड़ता है।

4. **रजिस्टर्ड ऋणपत्र (Registered Debentures) :** जो ऋणपत्र कम्पनी के रजिस्टर में लिखे जाते हैं और जिनके मूल व ब्याज का भुगतान रजिस्टर्ड धारकों को ही देय होता है, रजिस्टर्ड ऋणपत्र कहलाते हैं। इनके धारक इनका हस्तान्तरण विधान द्वारा निर्धारित विधि के अनुसार ही कर सकते हैं।

5. **शोध्य ऋणपत्र (Redeemable Debentures) :** ऐसे ऋणपत्र जिनका भुगतान एक निश्चित अवधि के बाद कम्पनी द्वारा किया जाता है, शोध्य ऋणपत्र कहलाते हैं।

6. **शोध्य ऋणपत्र (Redeemable Debentures) :** जिन ऋणपत्रों की राशि कम्पनी के समापन पर भुगतान की जाती है और कम्पनी के जीवन में भुगतान नहीं की जाती है उन्हें अशोध्य ऋणपत्र

कहते हैं। परन्तु इन पर ब्याज दिया जाता है यदि ब्याज देने में त्रुटि की जाती है तो इनका भुगतान कम्पनी के जीवन में कराया जा सकता है।

7. **परिवर्तनशील ऋणपत्र (Convertible Debentures) :** जब ऋणपत्रधारियों को यह विकल्प (Option) दिया जाता है कि निश्चित समय के अन्तर्गत अपने ऋणों को अंशों या स्कन्ध में परिवर्तन कर सकते हैं तो ऐसे ऋण पत्रों को परिवर्तनशली ऋणपत्र कहते हैं।

8. **अपरिवर्तनशील ऋणपत्र (Non-convertible Debenture) :** ऐसे ऋणपत्रों को अंशों या स्कन्ध में परिवर्तन का कोई अधिकार नहीं होता, और इनकी प्रकृति सुरक्षित ऋणपत्रों की भांति ही होती है।

3.2.4 ऋणपत्रधारियों का रजिस्टर (Register of Debenture Holders)

कम्पनी अधिनियम के अनुसार प्रत्येक कम्पनी के लिए अपने सभी ऋणपत्रधारियों का एक रजिस्टर बनाना अनिवार्य है और उस रजिस्टर में निम्न वर्णन दिया जाना चाहिए- (i) धारक का नाम व पता, (ii) ऋणपत्र का नम्बर व राशि, (iii) ऋणपत्र के प्रमाणपत्र का नम्बर (iv) ऋणपत्र धारक के धारक होने व अलग होने की विधि।

यदि धारकों की संख्या 50 से अधिक है तो कम्पनी के लिए यह आवश्यक है कि यह धारकों की एक अनुक्रमाणिका (Index) तैयार करें। इस अनुक्रमाणिका को रजिस्टर के साथ ही समाकर रखें। यदि इसमें कोई परिवर्तन होता है तो इसको 14 दिन के अन्दर रजिस्टर में शामिल करना चाहिए। धारा (88)(5)

यदि इस सम्बन्ध में त्रुटि की जाती है तो कम्पनी तथा प्रत्येक दोषी अधिकारी पर 50 रुपये तक जुर्माना किया जा सकता है।

3.2.5 ऋणपत्रों के साथ 'समरूप' नियम (Debenture with Pari Passu Clause)

ऋणपत्र एक शृंखला में जारी किए जाते हैं तो उनमें 'समरूप' वाक्यांश रहता है। इसका अर्थ है कि उन ऋणपत्रों का भुगतान अनुपातिक रूप से होगा। यह वाक्यांश उस समय अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है जब कम्पनी के पास ऋणपत्रों के भुगतान के लिए पर्याप्त धन नहीं रहता है। ऐसी दशा में उनका पुनः भुगतान अनुपातिक रूप से किया जाना चाहिए, चाहे ऋणपत्र अलग-अलग समय पर जारी किए गए हों। यदि 'समरूप' शब्द नहीं लिख जाते हैं तो ऋणपत्रों का भुगतान उनके निर्गमन की तिथि के अनुसार होता है और यदि सबका निर्गमन एक ही दिन होता है तो उसका भुगतान उनकी क्रम संख्या के आधार पर किया जाता है।

3.2.6 ऋणपत्रधारियों के उपचार (Remedies open to Debenture Holders)

एक ऋणपत्रधारी कम्पनी द्वारा उसका धन न भुगतान किए जाने पर निम्नलिखित उपचार कर सकता है-

1. ऋणपत्र द्वारा दिए हुए अधिकारों का प्रयोग- वह ऋणपत्र द्वारा दिए हुए अधिकारों का प्रयोग कर सकता है जैसे प्रचार वाली सम्पत्तियों को बेचना।
2. न्यायालय में प्रार्थना पत्र देना- यह न्यायालय में रिसीवर की नियुक्ति के लिए प्रार्थना पत्र दे सकता है और यह भी आवेदन कर सकता है कि प्रचार रखी हुई सम्पत्ति की बिक्री का आदेश नियमित किया जाए।
3. स्वयं रिसीवर नियुक्त करना- यदि ऋणपत्रों में ऐसा अधिकार दिया हुआ है तो ऋणपत्रधारी स्वयं रिसीवर नियुक्त कर सकता है।
4. कम्पनी के समापन के लिए आवेदन पत्र देना- चूंकि प्रत्येक ऋणधारी कम्पनी का लेनदार होता है, अतः वह अपने ऋण के भुगतान न होने की दशा में कम्पनी के समापन के लिए आवेदन पत्र दे सकता है।
5. न्यायालय द्वारा प्रतिभूति का धन वसूल करना- ऋणपत्रधारी न्यायालय से बिक्री प्राप्त करके सम्पत्ति को बेचकर धन वसूल कर सकता है।

6. कम्पनी के दिवालिया होने पर दावा करना- यदि कम्पनी दिवालिया है तो वह अपने उस ऋण को प्रमाणित करा सकता है जो उसे ऋणपत्रों की प्रतिभूति द्वारा वसूल नहीं हुआ है।

7. साधारण निधान के अनुसार ऋण का दावा करना- यह अपने ऋण व ब्याज के लिए साधारण रूप से न्यायालय में दावा कर सकता है।

3.3 प्रभार का अर्थ व प्रकार :

यदि किसी मूल्य वाले सौदे में दोनों पक्ष यह समझते हैं कि देनदार की वर्तमान या भविष्य की सम्पत्ति लेनदार को ऋण के भुगतान के लिए प्रतिभूति की तरह प्राप्त हो जाएगी तो इस सम्पत्ति को 'प्रभार' पर दी हुई सम्पत्ति कहते हैं। इसमें सम्पत्ति के हित का हस्तान्तरण नहीं होता है। धारा 124 के अनुसार कम्पनी अधिनियम के पांचवें भाग के लिए प्रभार में बंधक को शामिल किया गया है।

प्रभार दो प्रकार के हो सकते हैं- 1. स्थायी प्रभार 2. चल प्रभार।

स्थायी प्रभार (Fixed or Specific Change)

जब प्रभार किसी निश्चित एवं सम्पत्ति विशेष पर किया जाता है तब इसे स्थायी प्रभार कहा जाता है। ऐसा प्रभार उस सम्पत्ति की दशा में उचित होता है जो लगभग स्थायी रहती है, जैसे- भूमि, भवन या भारी मशीनों सम्बन्धित प्रभार कम्पनी स्थाई प्रभार के ऋणधारकों की सहमति के बिना तथा सम्पत्ति को प्रभार से मुक्त कराए बिना उसे बेच नहीं सकती। यदि इस सम्पत्ति को बेच दिया जाता है तो प्रभार के धारकों की सम्पत्ति के विरूद्ध प्रथमाधिकार होता है। स्थायी प्रभार में विशिष्ट सम्पत्ति का स्वामित्व कम्पनी के पास होता है परन्तु कानूनी स्वत्व (Legal Title) प्रभार के धारकों के पास होता है।

चल प्रभार (Floating Charge)

चल प्रभार किसी निश्चित अथवा निवेश सम्पत्ति से सम्बन्धित नहीं है परन्तु सम्पत्तियों पर होता है जो चल एवं सरल प्रकृति की होती हैं, जैसे-

3.3.1 स्थायी और चल प्रभार में अन्तर

क्र.	अन्तर आधार	अन्तर का स्थााई प्रभार	चल प्रभार
1.	सम्पत्तियां	यह किसी निश्चित एवं सम्पत्ति विशेष पर होता है।	यह ऐसी सम्पत्तियों पर होता है जो चल एवं सरल प्रकृति की होती हैं।
2.	सम्पत्तियों का रूप	इस प्रकार की सम्पत्तियां स्थाई रहती हैं।	इनकी सम्पत्तियाँ परिवर्तित होती रहती हैं।
3.	प्रयोग	इसकी सम्पत्तियों को कम्पनी प्रभार धारक की अनुमति के बिना प्रयोग नहीं कर सकती।	इन सम्पत्तियों को कम्पनी अपने व्यापार की साधारण प्रक्रिया में प्रयोग कर सकती है।
4.	विद्यमान सम्पत्ति	यह प्रभार विद्यमान सम्पत्तियों पर होता है।	यह प्रभार विद्यमान तथा भविष्य की सम्पत्तियों पर भी हो सकता है।
5.	परिवर्तन	ऋण एवं ब्याज के भुगतान की त्रुटि की दशा में यह प्रभार चल प्रभार चल प्रभार नहीं बनता है।	ऋण एवं ब्याज के भुगतान की त्रुटि की दशा में यह प्रभार स्थिर प्रभार बन जाता है।

व्यापारिक काल (Stock in Trade) - ये सम्पत्तियां परिवर्तित होती रहती है और प्रत्येक बार नए प्रभार की आवश्यकता होती है।

3.4 बन्धक का अर्थ

अचल सम्पत्ति के अधिकार को ऋण के भुगतान के लिए प्रतिभूति के रूप में रखना 'बंधक' (mortgage) कहा जाता है। इसमें सम्पत्ति के हित का हस्तान्तरण हो जाता है।

इस अचल सम्पत्ति के अधिकार को जिस पत्र द्वारा दिया जाता है उसे 'बंधक पत्र' (Mortage Deed) कहते हैं। हस्तांतरणकर्ता को (Mortgagor) तथा हस्तान्तरिती को (Mortgagee) कहते हैं।

3.4.1 प्रभार और बंधक में अन्तर (Difference between Charge and Mortgage)

क्र.	अन्त का आधार	प्रभार	बंधक
1.	सम्पत्ति में हित	इसमें सम्पत्ति के हित का यह हस्तांतरण नहीं किया जाता वरन् ऋण का भुगतान न होने पर सम्पत्ति दी जाती है, अर्थात् ऋण का भुगतान न होने पर सम्पत्ति से इसकी वसूली की जा सकता है।	यह ऐसी सम्पत्तियों पर होता है जो चल एवं सरल प्रकृति की होती है।
2.	अवधि (Duration)	प्रभार हमेशा के लिए हो सकता है।	बंधक बहुधा एक निश्चित अवधि के लिए होता है।
3.	क्षेत्र	प्रभार में बंधक भी सम्मिलित है।	बंधक, प्रभार का एक भाग होता है।

3.5 प्रभार के सम्बन्ध में नियम (Laws Regarding Charge)

Registration of Charge : शब्द 'प्रभार' में 'बंधक' सम्मिलित है। इसका अर्थ है कि प्रभारों की रजिस्ट्री के सम्बन्ध में जहां कहीं भी 'प्रभार' शब्द का प्रयोग किया गया है तो यह आवश्यक नहीं है कि वह केवल प्रभार के लिए है। एक कम्पनी द्वारा वैधानिक रूप से ऋण लेने के लिए कम्पनी अधिनियम के अधीन अनेक औपचारिकताओं का पालन सतर्कता से किया जाना चाहिए। जहां तक असुरक्षित ऋणों का सम्बन्ध है केवल एक अनिवार्यता यह है कि ऋण कम्पनी द्वारा ऋण लेने की वैध सीमा के अधीन होना चाहिए। जब ऋण कम्पनी की सम्पत्ति की प्रतिभूति पर किए जाते हैं तो धारा 125 के अधीन रजिस्ट्रार से निम्नलिखित प्रभारों की रजिस्ट्री कराना आवश्यक है-

1. ऋणपत्रों के लिए किया गया प्रभार।
2. कम्पनी की ऐसी अंश-पूंजी पर प्रभाव जो मांगी नहीं गई हैं।
3. अस्थायी सम्पत्ति पर प्रभार।
4. कम्पनी की देनदारियों (Book Debts) पर प्रभाव।
5. कम्पनी की चल पूंजी पर प्रभाव, जोकि गिरवी नहीं है।
6. कम्पनी की सम्पत्ति जिसमें व्यापारिक स्कन्ध (माल) भी शामिल है, पर किया गया अस्थाई प्रभार।
7. ऐसी याचनाओं पर प्रभाव जो की गयी हो परन्तु जिन पर भुगतान न हुआ हो।

8. किसी जहाज पर या जहाज के किसी अंश पर प्रभार।

9. ख्याति, पेटेण्ट, ट्रेडमार्क या कॉपराइट पर किया गया प्रभार।

जब ऐसा प्रभार उत्पन्न किया गया है तो प्रभार का विवरण, प्रभार करने या संलेख या उसकी प्रतिलिपि प्रभार करने के 30 दिन के अन्दर रजिस्ट्रार के यहां अधिनियम के अनुसार फाइल करना आवश्यक है। यदि कम्पनी रजिस्ट्रार को इस बात से सन्तुष्ट कर देती है कि विवरण व उक्त प्रपत्र या प्रतिलिपि को उक्त अवधि में प्रस्तुत न किए जाने के लिए उसके पर्याप्त कारण थे तो रजिस्ट्रार इस अवधि को 30 दिन तक और बढ़ा करता है। इसके लिए अधिक से अधिक अनुसूचि 10 में वर्णित फीस की दस गुणा राशि तक कम्पनी को देनी पड़ेगी। यदि ऐसे किसी प्रभार की उक्त रजिस्ट्री नहीं कराई गई है, तो उसके निम्नलिखित परिणाम होते हैं–

1. **प्रभार व्यर्थ (The Charge is Void) :** प्रभार कम्पनी के निस्तारक व अन्य सब लेनदारों (ऋणदाताओं) के विरूद्ध रखा जाता है।

2. **धन तत्कालीन देय (The money becomes immediately payable) :** धन जिसकी सुरक्षा के लिए प्रभार उत्पन्न किया गया है, उसी समय देय हो जाता है।

3. **दण्ड की व्यवस्था (Penalty) :** कम्पनी तथा कम्पनी का प्रत्येक ऐसा अधिकारी जो त्रुटि करता है, त्रुटि की अवधि में प्रतिदिन के लिए 500 रुपए तक जुर्माना देने के लिए दायी है।

प्रभार के नोटिस की तिथि (Date of Notice Regarding Charges)

यदि धारा 125 के अन्दर दिए गए प्रभारों की रजिस्ट्री की गई है तो जो व्यक्ति कम्पनी की सम्पत्तियों आदि इन प्रभारों के कारण प्राप्त करता है। उसे इन प्रभारों की सूचना उस तिथि से हुई मानी जाएगी जिस तारीख से इसका रजिस्ट्रेशन कराया गया है। (धारा 126)

सम्पत्तियों के प्रभार की रजिस्ट्री (Registration of Charges on Properties)

धारा 127 (1),

यदि कम्पनी ने किसी सम्पत्ति को प्राप्त किया है जिस पर ऐसा प्रभार है जिसकी रजिस्ट्री होनी चाहिए थी, तो इसे प्राप्त करने के 60 दिन के अन्दर कम्पनी इस प्रभार से सम्बन्धित प्रपत्रों को रजिस्ट्रार के लिए फाईल करवाएगी।

रजिस्ट्रार द्वारा प्रभारों का रजिस्टर रखना (Register of Charges to be Kept by the Registrar)

1. प्रत्येक कम्पनी के लिए रजिस्ट्रार उन प्रभारों के लिए रखता है जिनकी रजिस्ट्री कराना आवश्यक है। (धारा 130 (1),

2. प्रत्येक कम्पनी को उन सब प्रभारों का विवरण रजिस्ट्रार के पास भेजना पड़ता है। जिनकी रजिस्ट्री होनी है। (धारा 130(1),

3. प्रभारों का विवरण – (i) जो प्रभार ऋणपत्रों से सम्बन्धित होते हैं उनके सम्बन्ध में धारा 128 के अनुसार विवरण (अर्थात् अनुपातिक अधिकार वाले ऋणपत्रों पर कमीशन आदि) लिखा जाता है। अन्य प्रभारों के सम्बन्ध में प्रभार की तिथि, प्रभार की राशि, सम्पत्ति का सूक्ष्म विवरण तथा व्यक्तियों का विवरण जो इस प्रभार के लिए अधिकृत है लिखा जाता है। रजिस्टर पर प्रत्येक पृष्ठ पर क्रम संख्या डाली जाएगी। रजिस्ट्रार प्रत्येक पृष्ठ पर अपने हस्ताक्षर करेगा। (ii) रजिस्टर में उपयुक्ति वर्णित लेखे करने के बाद, रजिस्ट्रार उस प्रपत्र को उस व्यक्ति को लौटा देगा जिसने इसे रजिस्ट्रार के पास फाईल किया हो। (iii) उपर्युक्त रजिस्टर का निरीक्षण कोई भी व्यक्ति निर्धारित फीस (एक रुपया) देकर कर सकता है।

रजिस्ट्रेशन का प्रमाण पत्र (Certificate of Registration)

प्रत्येक प्रभार की रजिस्ट्री के बाद रजिस्ट्रार का प्रमाण पत्र निर्गमित करता है जिसमें उस धन की रकम लिखता है जिसके लिए प्रभार किया गया है। यह प्रमाण–पत्र इस बात का पक्का प्रमाण होता है कि प्रभार के रजिस्ट्रेशन सम्बन्धी सभी कार्यवाहियां पूरी की जा चुकी हैं।

रजिस्ट्रेशन का प्रमाण-पत्र का ऋण पृष्ठांकन
(Endorsement of Certificate of Registration of Debentures) :

कम्पनी ऐसे प्रत्येक प्रभार की रजिस्ट्री के प्रमाण–पत्र का ऐसे ऋणपत्र पर पृष्ठांकन करती है जिसके भुगतान के लिए प्रभार किया गया है, परन्तु प्रभार करने के पहले निर्गमित किए हुए ऋणपत्रों पर ऐसा पृष्ठांकन नहीं करना पड़ता। (धारा 133)।

प्रभार के रजिस्ट्रेशन के सम्बन्ध में कम्पनी के कर्त्तव्य
(Duties of Company as regards Registration of Charges) :-

1. प्रभार का विवरण रजिस्ट्रार के पास फाईल करवाना। [धारा 134 (1)]
2. प्रभार की रजिस्ट्री का प्रार्थना पत्र अन्य व्यक्तियों द्वारा देना। ये व्यक्ति उनके लिए दी जाने वाली फीस को कम्पनी से वसूल कर सकते हैं। [धारा 134 (2)]
3. प्रभार की शर्तो में परिवर्तन की सूचना रजिस्ट्रार को देना। [धारा 135]
4. प्रभार से सम्बन्धित प्रपत्र की प्रतिलिपि कम्पनी द्वारा अपने रजिस्टर्ड कार्यालय पर रखना। (धारा 136)।
5. यदि कोई व्यक्ति कम्पनी की सम्पत्ति का रिसीवर या मैनेजर नियुक्त किया गया है तो ऐसा होने के 30 दिन के अन्दर रजिस्ट्रार ऑफ कम्पनिज एक निर्धारित फीस का भुगतान किए जाने पर प्रभारों के रजिस्टर में लिख देगा और जब यह व्यक्ति इस पद से अलग होगा तो इसकी सूचना उसे रजिस्ट्रार को देगी होगी जिसका लेखा वह रजिस्टर में करेगा। त्रुटि करने वाले व्यक्ति पर त्रुटि की अवधि में 50 रुपए प्रतिदिन के हिसाब से अर्थदण्ड लगाया जा सकता है। (धारा 137)
6. यदि कम्पनी ने धारा 125 के अधीन रजिस्टर्ड प्रभार का भुगतान कर लिया है तो कम्पनी को ऐसे भुगतान की सूचना की तिथि से 30 दिन के अन्दर–अन्दर रजिस्ट्रार को देनी होगी। ऐसी सूचना प्राप्त होने पर रजिस्ट्रार को देनी होगी। ऐसी सूचना प्राप्त होने पर रजिस्ट्रार ऑफ कम्पनिज इसकी सूचना प्रभार के धारक को देगा और सूचना के 14 दिन के अन्दर आपत्ति उठाने का अवसर देगा। यदि धारक कोई आपत्ति नहीं करता तो रजिस्ट्रार आदेश देगा कि प्रभारों के रजिस्टर में इनके भुगतान का लेखा कर दिया जाए। यदि धारक ऐसी कोई आपत्ति करता है तो रजिस्ट्रार इसे नोट करता है और कम्पनी को इसकी सूचना भेजता है। रजिस्ट्रार किसी रजिस्ट्री युक्त प्रभार के भुगतान के प्रमाण से स्वयं सन्तुष्ट होने पर, इस तथ्य का ध्यान न रखते हुए कि उसके द्वारा कम्पनी से ऐसी कोई सूचना प्राप्त नहीं हुई है, प्रभारों के रजिस्टर में पूर्ण या आंशिक भुगतान की टिप्पणी की प्रविष्टी कर सकता है।

जब रजिस्ट्रार ऑफ कम्पनिज धाराओं 138 या 139 के अधीन पूर्ण या आंशिक भुगतान की टिप्पणी की प्रविष्टी रजिस्टार में कर लेता है तो यह आवश्यक है कि ऐसी टिप्पणी की एक प्रतिलिपि कम्पनी को भेजें। (धारा 140)

यदि संयोगवश या पर्याप्त कारणों के कारण कम्पनी द्वारा उत्पन्न किए गए किसी प्रभार का आवश्यक विवरण या ऐसे प्रभार के परिवर्तन की सूचना रजिस्ट्रार ऑफ कम्पनिज के पास फाईल नहीं

की गई तथा निर्धारित अवधि के अन्दर प्रभार की रजिस्ट्री नहीं कराई गई है तथा इसके भुगतान की सूचना रजिस्ट्रार को नहीं दी गई है, तो कम्पनी लॉ बोर्ड इन अनियमितताओं के कारण को यदि न्यायसंगत समझे तो वह कम्पनी या अन्य किसी हित रखने वाले व्यक्ति के आवेदन पत्र पर रजिस्ट्रेशन के लिए विवरण आदि फाईल करने की अवधि तथा प्रभार के भुगतान की सूचना देने की अवधि में वृद्धि करने की आज्ञा दे सकता है या जैसी भी दशा हो, सुधार की आज्ञा दे सकता है। जब कम्पनी लॉ बोर्ड रजिस्ट्रेशन की अवधि बढ़ाता है तो यह आदेश उन अधिकारों पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं डालेगा जो सम्पत्ति के सम्बन्ध में हो।

यदि रजिस्ट्रार के पास प्रभार से सम्बन्धित विवरण नहीं दिया जाता तथा रजिस्ट्री हुए प्रभार के भुगतान का विवरण नहीं दिया जाता है तो कम्पनी और कम्पनी के प्रत्येक दोषी अफसरों पर त्रुटि की अवधि में 500 रुपये प्रतिदिन के हिसाब से आर्थिक दण्ड लगाया जा सकता है। यदि कम्पनी प्रभारों की रजिस्ट्री से सम्बन्धित अन्य नियमों का पालन नहीं करती है तो प्रत्येक दोषी अफसर पर 1000 रुपये तक का आर्थिक दण्ड लगाया जा सकता है। (धारा 142)

प्रभार करने वाले संलेख की प्रतिलिपियां और कम्पनी के प्रभारों की रजिस्टर की जांच करने का अधिकार (Right to Inspect copies of Instruments Creating Charges and Company Register of Charges)

1. देनदारों व सदस्यों द्वारा नि:शुल्क फीस।
2. अन्य व्यक्तियों द्वारा निर्धारित फीस देकर निरीक्षण करना।
3. निरीक्षण मना करने पर आर्थिक दण्ड 50 रुपये तक हो सकता है और इसके अतिरिक्त 20 रुपये तक प्रतिदिन के हिसाब से जुर्माना होता रहेगा जब तक दोष चलता रहेगा।
4. कम्पनी लॉ बोर्ड द्वारा निरीक्षण के लिए कम्पनी को बाध्य करना।

3.7 सभाएं तथा प्रस्ताव का अर्थ

कम्पनी एक कृत्रिम व्यक्ति है। कम्पनी का अस्तित्व केवल कानून की दृष्टि में है। उसका कोई अपना भौतिक अस्तित्व नहीं होता। अत: प्रश्न उठता है कि जब कम्पनी एक बनावटी व्यक्ति है तब इसका व्यापार कौन चलाता है। यह समस्या एकाकी व्यापार व साझेदारी व्यापार की दशा में उत्पन्न नहीं होती, क्योंकि एकाकी व्यापार में एक व्यक्ति और साझेदारी व्यापार में दो या अधिक व्यक्ति कारोबार को चलाते हैं। कम्पनी का व्यापार चलाने का भार संचालक मण्डल को होता है। लेकिन संचालक मण्डल के कार्यों पर सदस्यों का ही नियंत्रण रहता है। अत: सदस्यों के लिए आवश्यक है कि वे समय-समय पर एकत्रित होकर संचालकों के द्वारा किए गए कार्यों को देखें, उनके सम्बन्ध में अपने सुझाव दें तथा भविष्य के लिए योजनाएं बनाएं। इन कार्यों को करने के लिए समय-समय पर उनकी सभाएं बुलाई जाती हैं और उनमें विभिन्न गतिविधियों से सम्बन्धित प्रस्ताव पारित किए जाते हैं। सभा की विभिन्न परिभाषाएं निम्न प्रकार से दी गई हैं:-

पी. के. घोष के शब्दों में, "सभा का आशय सामान्य हित के किसी वैध व्यवसाय को करने के लिए दो या दो से अधिक व्यक्तियों का साथ आना अथवा एकत्रित होना है।"

(Any gathering, assembly or coming together of two or more persons for the transaction of some lawful business of common concern is called meeting-P.K. Ghosh).

के. किशोर के अनुसार, "एक सामान्य हित के लिए कार्यवाही करने के लिए पूर्व सूचना या आपसी समझौते द्वारा सदस्यों की कम-से-कम एक कार्यवाहक संख्या (Quorum) का इकट्ठा होना ही सभा है।"

(A Concurrence or coming together of atleast quorum of members by previous notice or mutual aggeement for transacting business for a common interest is meeting K. Kishore)

"निष्कर्ष में यह कहा जा सकता है कि 'सभा से अभिप्राय दो या दो से अधिक व्यक्तियों अथवा एक कार्यवाहक संख्या का सामान्य उद्देश्य के लिए किसी वैध कार्य को करने के लिए किसी निश्चित स्थान पर सभा की पूर्व सूचना देकर अथवा आपसी समझौते द्वारा एकत्रित होने से है।"

3.7.1 कम्पनी की सभा के प्रकार

कम्पनी की सभाओं को निम्नलिखित भागों में बांटा जा सकता है।

1. अंशधारियों की सभाएं (Meetings of share holders)
   - (i) वैधानिक सभा (Statutory Meeting)
   - (ii) वार्षिक साधारण सभा (Annual General Meeting)
   - (iii) असाधारण सभा (Extra ordinary General Meeting)
2. अंशधारियों की वर्ग सभाएं (Class Meetings of Shareholders)
3. लेनदारों तथा ऋणधारियों की सभाएं (Meetings of Creditors and Debenture holders)
   - (i) कम्पनी के जीवन-काल के दौरान (During the life of the Company)
   - (ii) कम्पनी के समापन के समय (At the time of Dissolution of the Company)
4. संचालकों की सभाएं (Meetings of Directors)

1. अंशधारियों की सामान्य सभाएं

(A) वैधानिक सभा (Statutory Meeting)

अंशों द्वारा सीमित या गारन्टी द्वारा सीमित किन्तु अंश पूंजी रखने वाली प्रत्येक कम्पनी द्वारा व्यापार प्रारंभ करने का प्रमाण-पत्र प्राप्त करने की तिथि से महीने बाद 6 महीनों के अंदर कम्पनी के सदस्यों की सभा बुलाई जाती है, जिसे वैधानिक सभा कहा जाता है। इस सभा की सूचना सभी सदस्यों को 21 दिन पूर्व दी जानी आवश्यक है। इसके साथ ही प्रत्येक सदस्य को एक रिपोर्ट भेजी जाती है, जिसे वैधानिक रिपोर्ट (Statutory Report) कहते हैं। वैधानिक रिपोर्ट में निम्नलिखित सूचनाओं को सम्मिलित किया जाता है-

- (i) कम्पनी के कुल आबंटित अंशों की संख्या।
- (ii) अंशों के प्रकार व प्रत्येक अंश पर दत्त पूंजी भुगतानों का विवरण।
- (iii) रिपोर्ट की तिथि से पहले की प्राप्तियों तथा भुगतानों का विवरण।
- (iv) संचालकों एवं अंकेक्षक के नाम, पत्ते व व्यवसाय।
- (v) सभा में पारित किए जाने वाले अनुबंधों का विवरण।
- (vi) अभिगोपन अनुबंधों का विवरण।
- (vii) प्रत्येक संचालक व मैनेजर व याचनाओं की शेष राशि का विवरण।
- (viii) अंशों या ऋणपत्रों के सम्बन्ध में अदा की गई कमीशन व दलाली का विवरण।

वैधानिक रिपोर्ट से सम्बन्धित अन्य मुख्य बातें-

(i) यह रिपोर्ट कम से कम दो संचालकों द्वारा प्रमाणित की जानी चाहिए।

(ii) इस रिपोर्ट की पहली तीन मदें कम्पनी के अंकेक्षक द्वारा प्रमाणित की जानी चाहिए।

(iii) वैधानिक रिपोर्ट की एक प्रति रजिस्ट्रार के पास भेजी जानी चाहिए।

सभा की कार्यवाही (Procedure at the Meeting)

वैधानिक सभा की कार्यवाही से सम्बन्धित मुख्य पहलू निम्नलिखित हैं-

(i) वैधानिक सभा प्रारंभ होते ही कम्पनी के सदस्यों के विवरण की एक सूची पेश की जानी चाहिए।

(ii) सभा के दौरान कोई भी सदस्य इस सूची का निरीक्षण कर सकता है।

(iii) पूर्व सूचना के अभाव में कोई प्रस्ताव पास नहीं किया जाएगा।

(iv) वैधानिक रिपोर्ट से सम्बन्धित किसी भी पहलू पर उपस्थित सदस्य बहस कर सकते हैं।

(v) सभा स्थगित की जा सकती है।

वैधानिक सभा का उद्देश्य (Object of Statutory Meeting)

(i) अंशधारियों को कम्पनी के गठन के परिणामों से अवगत कराना।

(ii) कम्पनी के व्यापार को प्रभावी ढंग से आरम्भ करने से पूर्व सदस्यों को विचार-विमर्श का अवसर प्रदान करना।

वैधानिक सभा से छूट (Relaxation as regard to Statutory Meetings)

निम्नलिखित कम्पनी के लिए वैधानिक सभा करना अनिवार्य नहीं है-

(i) निजी कम्पनी ।

(ii) गारन्टी द्वारा सीमित तथा बिना अंशपूंजी की कम्पनी।

(iii) असीमित दायित्व वाली कम्पनी।

नोट : कम्पनी अधिनियम, 1956 की धारा 165 के अन्तर्गत वैधानिक सभा तथा वैधानिक रिपोर्ट से सम्बन्धित प्रावधान थे परन्तु कम्पनी अधिनियम, 2013 के अन्तर्गत यह धारा समाप्त कर दी गई है। अतः नये कम्पनी अधिनियम, 2013 के अन्तर्गत वैधानिक सभा का कोई प्रावधान नहीं है।

(B) वार्षिक साधारण सभा (Annual General Meeting)

वार्षिक साधारण सभा से सम्बन्धित कुछ मुख्य तथ्य निम्नलिखित हैं-

(i) अन्य सभाओं के अतिरिक्त एक साधारण सभा बुलाना अनिवार्य है।

(ii) किन्हीं दो साधारण सभाओं के मध्य 15 महीने से अधिक का अन्तर नहीं होना चाहिए।

(iii) अब कम्पनी का अपनी वार्षिक साधारण सभा कम्पनी के प्रथम वित्तीय वर्ष की समाप्ति के 9 महीने के अंदर आयोजित करनी होगी।

(iv) रजिस्ट्रार विशेष परिस्थितियों में किसी वार्षिक साधारण सभा का समय तीन महीने तक बढ़ा सकता है।

(v) पहली वार्षिक साधारण सभा का समय नहीं बढ़ाया जा सकता।

(vi) सभा का समय वार्षिक साधारण सभा कार्य-समय के दौरान किसी भी दिन जोकि सार्वजनिक छुट्टी का दिन न हो बुलाई जा सकती है।

(vii) सभा का स्थान वार्षिक साधारण सभा पंजीकृत कार्यालय में बुलाई जानी चाहिए या फिर उसी शहर, कस्बे या गांव में किसी अन्य स्थान पर जहां पंजीकृत कार्यालय स्थित हो।

(viii) यह सभा 21 दिन की पूर्व सूचना देकर बुलाई जाती है।

(ix) सभा को रद्द करना : यदि सभा की सूचना सदस्यों को भेज दी गई है और संचालक मण्डल इसे रद्द करना चाहता है तो ऐसा किया जा सकता है।

(x) सभा न बुलाने के परिणाम : धारा 99 के अन्तर्गत कोई भी व्यक्ति कम्पनी लॉ बोर्ड से सभा बुलाने की प्रार्थना कर सकता है तथा दोषी अधिकारियों व कम्पनी पर 1,00,000 रुपए तक जुर्माना किया जा सकता है।

(xi) सभा का महत्व वार्षिक साधारण सभा का महत्व निम्नलिखित तथ्यों से स्पष्ट होता है-

(a) अंशधारियों का कम्पनी की गतिविधियों पर नियंत्रण सम्भव।

(b) इस सभा के माध्यम से अंशधारी अपने हितों की रक्षा कर सकते हैं।

(c) किसी संचालक के कार्य में संतुष्ट न होने पर उसकी पुनर्नियुक्ति से इंकार किया जा सकता है।

(d) वार्षिक लेखों पर विचार व लाभांश की घोषणा इसी सभा में की जाती है।

(C) असाधारण सभा (Extra Ordinary Meeting)

वैधानिक सभा व वार्षिक साधारण सभाएं, साधारण सभाएं कहलाती हैं। इन सभाओं में विभिन्न निर्णय लिए जाते हैं। लेकिन कुछ निर्णय ऐसे हो सकते हैं। जिनके लिए आगामी सभा तक इंतजार नहीं किया जा सकता। ऐसी स्थिति में असाधारण सभा बुलाई जाती है। ये सभाएं निम्नलिखित तरीकों से बुलाई जा सकती हैं-

1. संचालक मण्डल द्वारा (By the Board of Directors)

(i) स्वयं संचालक मण्डल द्वारा: आवश्यकता पड़ने पर संचालक मण्डल कभी भी असाधारण सभा बुला सकता है।

(ii) अंशधारियों द्वारा मांग करने पर : सदस्यों की निर्धारित संख्या द्वारा मांग किए जाने पर संचालक मण्डल सभा बुलाने हेतु कार्यवाही आरंभ कर सकता है। अंश पूंजी वाली कम्पनी में दत्त पूंजी वाली कम्पनी में दत्त पूंजी का कम से कम 1/10 भाग रखने वाली अंशधारी तथा बिना अंशपूंजी वाली कम्पनी के कुल सदस्यों का कम से कम 1/10 भाग रखने वाले सदस्य, जिन्हें मतदान का अधिकार हो, इस सभा की मांग कर सकते हैं।

2. स्वयं मांगकर्ताओं द्वारा बुलाई गई असाधारण सभा (Extra ordinary meeting called by the Requisitionist)

मांग किए जाने पर असाधारण सभा बुलाने में असमर्थ रहता है तो निम्नलिखित व्यक्तियों द्वारा सभा बुलाई जा सकती है-

(i) स्वयं मांगकर्ताओं द्वारा या

(ii) अंश पूंजी वाली कम्पनी की स्थिति में, दत्त अंशपूंजी में बहुमत अथवा दत्त पूंजी का कम से कम 1/10 भाग इन दोनों में जो भी कम हो रखने वाले अंशधारियों द्वारा या;

(iii) बिना अंशपूंजी वाली कम्पनी में, कुल सदस्यों के मतों का कम से कम 1/10 भाग रखने वाले सदस्यों द्वारा या;

(i) यदि इस सभा के लिए कम्पनी का पंजीकृत कार्यालय उपलब्ध नहीं करवाया जाता, तो वह सभा किसी भी स्थान पर की जा सकती है।

(ii) जमा के सभी उचित खर्चे कम्पनी से वसूल किए जा सकते हैं।

(iii) कम्पनी इन खर्चों को दोषी संचालकों से वसूल कर सकती है।

3. **अंशधारियों की वर्ग सभाएं :** ऊपर वर्णित तीनों प्रकार की सभाओं में सभी प्रकार के अंशधारी उपस्थित रह सकते हैं। लेकिन जब किसी ऐसे विषय पर निर्णय लिया जाता है जो किसी वर्ग विशेष से सम्बन्धित है तो उसी वर्ग के अंशधारियों की सभा बुलाई जाती है इन सभाओं को वर्ग सभाएं कहा जाता है।

4. **लेनदारों तथा ऋणधारियों की सभाएं :** अंशधारियों की भांति ही आवश्यकता पढ़ने पर लेनदारों व ऋणधारियों की सभाएं भी बुलाई जाती हैं। इन सभाओं की आवश्यकता उस समय पड़ती है जब कोई विषय विशेष रूप से इसी पक्ष से सम्बन्धित हो अथवा किसी निर्णय से इनके हितों पर कोई जांच आती हो। ये सभाएं कम्पनी के जीवन काल में भी होती हैं और कम्पनी के समापन के समय भी बुलाई जा सकती हैं।

5. **संचालकों की सभाएं :** कम्पनी के अंशधारियों, लेनदारों व ऋण-पत्रधारियों की भांति ही संचालक मण्डल द्वारा भी सभाएं आयोजित की जाती हैं। संचालक अपनी शक्तियों का उपयोग इन सभाओं में ही करते हैं। कम्पनी अधिनियम में संचालक मण्डल की सभाओं के सम्बन्ध में निम्नलिखित प्रावधान दिए गए हैं-

(i) कम्पनी के संचालक मण्डल की सभा कम से कम तीन महीने में एक बार तथा साल में कम से कम चार बार अवश्य होनी चाहिए।

(ii) इस सभा की लिखित सूचना प्रत्येक संचालक को दी जानी चाहिए।

(iii) इस सभा के लिए कोरम (Quorum) संचालक मण्डल की कुल संख्या के 1/3 या दो संचालक (इन दोनों में से जो भी अधिक हो) होंगे।

(iv) यदि कोरम के अभाव में कोई सभा स्थगित करनी पड़ जाए तो यह सभा अगले सप्ताह, उसी समय, उसी दिन होगी।

3.8 वैध सभा की आवश्यकताएं (Requisites of a Valid Meeting)

किसी भी सभा को वैध बनाने के लिए निम्नलिखित शर्तें पूरी की जानी चाहिए। यदि शर्तें पूरी नहीं की जाती हैं तो सभा में लिए गए निर्णयों की कोई वैधानिक मान्यता नहीं होगी।

1. **सभा बुलाने हेतु व्यक्ति (Proper Authority) :** सभी की वैधता का प्रथम लक्षण यह है कि सभा उचित रूप से अधिकृत व्यक्ति द्वारा बुलाई जानी चाहिए। जैसे-कम्पनी की साधारण सभा बुलाने के लिए केवल संचालक मण्डल की उचित रूप से अधिकृत है।

2. **सभा की सूचना (Notice of Meeting) :** कम्पनी अधिनियम की धारा 173 के अनुसार एक वैध सभा की उचित सूचना सभी सदस्यों को दी जानी चाहिए। यह सूचना कम से कम 21 दिन पूर्व दी जानी चाहिए। कुछ स्थितियों में 21 दिन से कम सूचना दी जा सकती है। लेकिन सभी प्रकार की सभाओं के लिए सूचना देना आवश्यक है। सभा की सूचना में सभा का समय, स्थान, दिन

दिया जाना चाहिए। उसमें उक्त सभा में लिए जाने वाले निर्णयों को भी लिखा जाना चाहिए।

3. **सभा के लिए कोरम (Quorum for Meeting) :** कोरम का अभिप्राय सदस्यों की उस न्यूनतम संख्या से है जो सभा की कार्यवाही प्रारंभ करते समय होनी आवश्यक है। एक वैध सभा के लिए कोरम की उपस्थिति अनिवार्य है। कोरम के निर्धारण सम्बन्धी प्रावधान कम्पनी के अन्तर्नियमों में दिए होते हैं। यदि अन्तर्नियमों में ऐसा प्रावधान नहीं है तो सभा की कार्यवाही संख्या कुल संचालकों की संख्या का 1/3 या 2 संचालक (दोनों में से जो भी अधिक हो) मानी जाएगी। यदि कुल संचालकों की संख्या का 1/3 करने से पूरी संख्या नहीं आती है तो उस खण्ड को एक मान लिया जाएगा। (धारा 174)

   यदि कार्यवाहक संख्या के अभाव में संचालक-मण्डल की सभा नहीं हो पाती तो यह सभा अगले सप्ताह उसी समय व उसी स्थान पर होगी। यदि वह दिन सार्वजनिक छुट्टी का दिन है तो वह सभा अगले कार्य दिवस पर होगी। (धारा 174)

कम्पनी अधिनियम की धारा 2 (49) के अनुसार पब्लिक कम्पनी के संचालक मण्डल की सभा में वे संचालक जिनका उस सभा में विचारधीन किसी विषय में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष निजी हित होता है, उस समय वे उस पर अपना वोट भी नहीं दे सकते हैं तथा कार्यवाहक संख्या के लिए उसकी उपस्थिति की गणना नहीं की जाएगी। यदि हितबद्ध संचालकों के कारण कार्यवाहक संख्या नहीं बनती है तो उस संचालकों की संख्या जिनको कोई हित नहीं है, दो से कम होते हुए भी कार्य वाहक संख्या होगी।

4. **सभापति (Chairman)**

यह व्यक्ति जो सभा का संचालन करता है 'सभापति' कहलाता है: यह सभा का अध्यक्ष होता है। सभापति का चुनाव सभा में उपस्थित सदस्यों से किया जाता है। अन्तर्नियम सभापति के चुनाव की विधि निर्धारित कर सकते हैं। एक सभापति के निम्नलिखित कर्त्तव्य (Duties) होते हैं-

(i) उसे पूरी ईमानदारी से कम्पनी के हित में कार्य करना चाहिए।

(ii) उसे ध्यान रखना चाहिए कि सभा की उचित सूचना दी गई हो।

(iii) कोरम सम्बन्धी नियमों का पालन करना चाहिए।

(iv) सभा की कार्यवाही नियमित ढंग से चलाई जानी चाहिए।

(v) अन्तर्नियमों के प्रावधानों को पालन किया जाना चाहिए।

(vi) पूर्व निर्धारित क्रम से ही विभिन्न विषयों पर कार्यवाही की जानी चाहिए।

(vii) उसे सभा में व्यवस्था बनाई रखनी चाहिए।

(viii) प्रत्येक प्रश्न पर सभा में उपस्थित सदस्यों की राय लेनी चाहिए।

(ix) मतदान के परिणाम की घोषणा करना।

(x) उसे अपने वोट का प्रयोग ईमानदारी से कम्पनी के हित में करना चाहिए।

(xi) उसे अल्पसंख्यकों के हितों का भी ध्यान रखना चाहिए।

(xii) उसे सभा स्थगित करने सम्बन्धी अपने अधिकार का उचित ढंग से प्रयोग करना चाहिए।

5. **सभा का विवरण (Minutes of Meeting)**

सभा में की गई कार्यवाही को संक्षिप्त में लिखना, सभा विवरण कहलाता है। इस उद्देश्य के लिए विशेष पुस्तकें रखी जाती हैं। उन्हीं में सभाओं का विवरण भविष्य के संदर्भ के लिए रखा जाता है।

प्रॉक्सी (Proxy) (धारा -105)

किसी सभा से सम्बन्धित सभी सदस्यों को सभा में उपस्थित होने का अधिकार होता है। यदि कोई सदस्य व्यक्तिगत रूप से उपस्थित हो सकता है तो वह अपने स्थान पर किसी अन्य व्यक्ति को अपने प्रतिनिधि के रूप में भेज सकता है। इस तरह नियुक्त प्रतिनिधि को 'प्रॉक्सी' कहा जाता है। प्रॉक्सी के सम्बन्ध में मुख्य प्रावधान निम्नलिखित हैं-

(i) प्रॉक्सी को सभा में बोलने का अधिकार नहीं होता। प्रॉक्सी केवल वोटों द्वारा चुनाव में भाग ले सकता है।

(ii) प्रॉक्सी लिखित रूप में होनी चाहिए और सभा के 48 घण्टे पहले यह सूचना कम्पनी में जमा कर देनी चाहिए।

(iii) यदि सभा प्रारम्भ होने पर सदस्य स्वयं उपस्थित होता है तो प्रॉक्सी खंडित हो जाती है। लेकिन यह खण्डन मतदान होने से पहले ही किया जा सकता है।

(iv) सभा में उपस्थित कोई भी सदस्य जमा की गई प्रॉक्सियों (Proxies) का निरीक्षण कर सकता है।

3.9 प्रस्ताव (Resolution)

कम्पनी की सभा में विचार-विमर्श के लिए रखे जाने वाले प्रश्न प्रस्ताव के रूप में होते हैं। पहले प्रस्ताव सभा में उपस्थित सदस्यों के समक्ष पेश किया जाता है। उसके बाद उस पर बहस होती है अर्थात् सभी की राय जानी जाती है। आवश्यकता पड़ने पर वोट डालकर भी मतदान किया जा सकता है। प्रस्ताव या तो स्वीकार या अस्वीकार किया जाता है। जो प्रस्ताव स्वीकार कर लिए जाते हैं उन्हें लागू कर दिया जाता है। अस्वीकृत प्रस्तावों को छोड़ दिया जाता है। कम्पनी अधिनियम, 2013 के अनुसार प्रस्ताव तीन प्रकार के होते हैं-

1. साधारण प्रस्ताव (Ordinary Resolution)
2. विशेष प्रस्ताव (Special Resolution)
3. विशेष सूचना की आवश्यकता वाले प्रस्ताव (Resolution Requiring Special Notice)

3.9.1 साधारण प्रस्ताव (Ordinary Resolution)

यह प्रस्ताव सभा में उपस्थित सदस्यों व प्रॉक्सियों द्वारा साधारण बहुमत से पारित किया जाता है। यदि मतदान में भाग लेने वाले आधे से अधिक सदस्य प्रस्ताव के पक्ष में मत देते हैं तो प्रस्ताव पारित हुआ माना जाता है। साधारण बहुमत का अभिप्राय 50 प्रतिशत से अधिक मतदाताओं से है। निम्नलिखित प्रमुख विषयों पर निर्णय लेने के लिए साधारण प्रस्ताव पारित किया जाता है।

(i) कम्पनी के नाम में परिवर्तन करना।

(ii) अंशों का कटौती पर निर्गमन करना।

(iii) कम्पनी की अंशपूंजी में परिवर्तन करना।

(iv) लाभांश की घोषणा करना।

(v) अंकेक्षक लेखों का अनुमोदन करना।

(vi) संचालकों की नियुक्ति करना।

(vii) अंकेक्षकों की नियुक्ति करना।

(viii) संचालकों की संख्या में कमी या वृद्धि करना।

(ix) संचालकों को उसके अधिकारों को लागू करने की अनुमति देना।

(x) एकल विक्रेता (Sole Selling Agent) की नियुक्ति को अनुमोदित करना।

(xi) संचालकों को पासबुक का अनुमोदन करना।

(xii) कम्पनी के स्वैच्छिक विज्ञापन को अनुमोदित करना।

3.9.2 विशेष प्रस्ताव (Special Resolution)

जब कोई प्रस्ताव साधारण बहुमत के स्थान पर तीन-चौथाई बहुमत से पास किया जाए, वह विशेष प्रस्ताव कहलाता है। सूचना में इस आशय को स्पष्ट लिखा जाना चाहिए कि कौन-सा प्रस्ताव होगा।

निम्नलिखित मुख्य विषयों पर निर्णय लेने के लिए विशेष प्रस्ताव की आवश्यकता होती है-

(i) कम्पनी के पंजीकृत कार्यालय को एक राज्य से दूसरे राज्य में ले जाना।

(ii) कम्पनी के उद्देश्य वाक्य में परिवर्तन करना।

(iii) कम्पनी के अन्तर्नियमों में परिवर्तन करना।

(iv) अंशधारियों के अधिकारों में परिवर्तन करना।

(v) किसी नए व्यापार को शुरू करना।

(vi) पूंजी में से ब्याज का भुगतान करना।

(vii) निरीक्षक को नियुक्ति के सम्बन्ध में केन्द्र सरकार को आवेदन करना।

(viii) कुछ विशेष परिस्थितियों में एकल विक्रय एजेन्ट की नियुक्ति करना।

(ix) कम्पनी के समापन के लिए न्यायालय में आवेदन करना।

(x) कम्पनी का स्वेच्छा के लिए न्यायालय ने आवेदन करना।

3.9.2 विशेष सूचना की आवश्यकता वाले प्रस्ताव (Resolution Requiring Special Notice)

धारा 115 के अनुसार, प्रस्तावक द्वारा कम्पनी को प्रस्ताव पेश करने के आशय की विशेष सूचना दी जानी चाहिए। इस इरादे की सूचना सभा के कम से कम 14 दिन पहले दी जानी चाहिए। सभा की तिथि से कम से कम 7 दिन पहले इस प्रकार के प्रस्ताव की सूचना सभी सदस्यों को उसी प्रकार भेजी जाएगी जिस प्रकार सभा बुलाने की सूचना भेजी जाती है। यदि सदस्यों को इस संदर्भ में अलग-अलग सूचित किया जाना सम्भव न हो तो वह सूचना किसी समाचार पत्र में विज्ञापन द्वारा दी जानी चाहिए। निम्नलिखित विषयों के बारे में इस प्रकार की सूचना देना आवश्यक है-

1. रिटायर होने वाले अंकेक्षक को छोड़कर किसी अन्य अंकेक्षक की नियुक्ति।
2. यदि रिटायर होने वाला अंकेक्षक पुनः नियुक्त न किया जाना हो।
3. यदि किसी संचालक को उसका कार्यकाल पूरा होने से पहले हटाना हो।
4. हटाए गए संचालक के स्थान पर किसी अन्य को संचालक नियुक्त करना।

4. निष्कर्ष (Summary)

साधारणतया कम्पनियाँ अपने सीमानियम में ऋण लेने का स्पष्ट अधिकार प्राप्त कर लेती हैं। परन्तु कभी–कभी सीमानियम अथवा अन्तर्नियम ऐसे अधिकार को सीमित कर देते हैं और ऐसी दशाओं में संचालकगण ऐसे अधिकार का प्रयोग उन्हीं सीमाओं के अधीन कर सकते हैं।

कम्पनी के अधिकांश विषयों का निर्णय सभाओं द्वारा होता है। सभाएं अंशधारियों की भी हो सकती हैं और संचालकों की भी। कम्पनी की नीति निर्धारण में इन सभाओं का बहुत अधिक महत्व है।

5. प्रस्तावित पुस्तकें (Suggested Readings)

1.	Company Law	- N. D. Kapoor	Sultan Chand & Sons
2.	Company Law and Secetarial Practice	- Dr. S.M Shukla	Sahitya Bhawan Pub.
3.	Company Law and Secretarial Practice	- Dr. D. P. Jain	Dhanpat Rai & Co. (P) Ltd.
4.	Company Law and Auditing	- S. C. Aggarwal	VK Global Pub.
5.	Company Law and Auditing	- Ashok Sharma	R.Chand & Company

6. नमूने के लिए प्रश्न (Sample Questions)

1. एक कम्पनी के ऋण लेने के अधिकार की व्याख्या कीजिए। कम्पनी द्वारा ऋण लेने के अधिकारों पर क्या प्रतिबन्ध है?

   (Explain the borrowing powers of a company. What are the restrictions on the borrowing powers of a Company?)

2. ऋणपत्र से आप क्या समझते हैं? ऋणपत्रों के विभिन्न प्रकारों की चर्चा कीजिए।

   (What do you mean by Debentures? Discuss the various types of debentures.)

3. वैधानिक सभा पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

   (Write short Note on Statutory Meeting)

4. वार्षिक व्यापक सभा क्या है? ऐसी सभा को बुलाने के सम्बन्ध में वैधानिक व्यवस्थाओं का वर्णन कीजिए।

   (What is Annual General Meeting? State the legal provision regarding calling of such a meeting)

5. विशेष प्रस्ताव तथा साधारण प्रस्ताव पर टिप्पणी लिखिए।

   (Write a note on special Resolution and ordinary Resolution)

B.Com - II

Subject : Company Law & Auditing **Writer : Dr. Jagdish Gupta**

Lesson No : 5 **Updated By : Ashu K. Garg**

प्रबन्ध एवं प्रशासन
(Management and Administration)

अध्याय की रूपरेखा (Structure of the Lesson)

1. परिचय (Introduction)
2. अध्याय के उद्देश्य (Objectives of Chapter)
3. विषय सामग्री का प्रस्तुतिकरण (Presentation of Contents)
   - 3.1 संचालक का अर्थ
     - 3.1.1 संचालकों की नियुक्ति
     - 3.1.2 संचालकों को हटाना
     - 3.1.3 संचालकों की वैधानिक स्थिति
     - 3.1.4 संचालकों की अंश योग्यताएँ
     - 3.1.5 संचालकों की अयोग्यताएँ
     - 3.1.6 संचालक कौन हो सकता है?
     - 3.1.7 संचालकों का पारिश्रमिक
   - 3.2 संचालक मण्डल के अधिकार
   - 3.3 संचालक के कर्त्तव्य
   - 3.4 संचालक का दायित्व
   - 3.5 प्रबंध संचालक
     - 3.5.1 प्रबंध संचालक के पद के लिए अयोग्यताएँ
     - 3.5.2 प्रबन्ध संचालक का पारिश्रमिक
4. निष्कर्ष (Conclusion)
5. प्रस्तावित पुस्तकें (Suggested Readings)
6. नमूने के लिये प्रश्न (Sample Questions)

1. परिचय (Introduction)

कम्पनी का प्रबन्ध एकाकी व्यापार तथा साझेदारी के प्रबन्ध से भिन्न होता है। एकाकी व्यापार तथा साझेदारी की दशा में उनके प्रबन्ध का कार्य उनके स्वामी करते हैं जबकि कम्पनी की दशा में ऐसा नहीं होता है। कम्पनी के स्वामी या अंशधारी कम्पनी का प्रबन्ध करने का अधिकार तो रखते हैं परन्तु व्यवहार में वे सक्रिय रूप से प्रबन्ध में भाग नहीं लेते हैं। अंशधारी अपने इस अधिकार को अपने द्वारा ही चुने हुए संचालकों को सौंप देते हैं। सामूहिक रूप से वे 'संचालक मण्डल' कहलाते हैं।

2. अध्याय के उद्देश्य (Objectives of Chapter)

इस अध्याय के निम्न उद्देश्य हैं:

1. संचालक का अर्थ, नियुक्ति व हटाने के बारे में जानकारी देना;
2. संचालकों की वैधानिक स्थिति, पारिश्रमिक व अयोग्यता की जानकारी देना;
3. संचालक मण्डल के अधिकार व कर्त्तव्य बताना;
4. संचालकों के दायित्व बताना;
5. प्रबंध संचालक के बारे में जानकारी उपलब्ध करवाना।

3.0 विषय-सामग्री का प्रस्तुतीकरण (Presentation of Contents) अध्याय की विषय-सामग्री का प्रस्तुतीकरण निम्न प्रकार से है।

3.1 संचालक का अर्थ :

जैसा कि स्पष्ट है कम्पनी एक निष्क्रिय व्यक्ति है। उसे अपने कार्य संचालन के लिए जिन व्यक्तियों की आवश्यकता है उनमें संचालकों का मुख्य स्थान है। कम्पनी इन्हीं व्यक्तियों के माध्यम से अपना व्यापार करती है। सामूहिक रूप में इन्हें संचालक मण्डल कहते हैं। संचालक एक व्यक्ति ही हो सकता है। कोई समामेलित संस्था, संगठन अथवा फर्म किसी कम्पनी के संचालक नहीं हो सकते। कम्पनी अधिनियम, 2013 की धारा 149 में यह प्रावधान है। कि प्रत्येक कम्पनी का एक संचालक मण्डल होगा। जिसके संचालक के रूप में व्यक्ति होंगे और उनकी संख्या-

1. सार्वजनिक कम्पनी की दशा में न्यूनतम तीन संचालक, निजी कम्पनी की दशा में न्यूनतम दो संचालक, तथा एक व्यक्ति कम्पनी की दशा में एक संचालक होगी।
2. संचालकों की अधिकतम संख्या 15 होगी।

परन्तु कम्पनी विशेष प्रस्ताव पारित करने के पश्चात पंद्रह से अधिक संचालक नियुक्त कर सकती है। तथा किन्हीं कम्पनियों के ऐसे वर्ग या वर्गों में जो निर्धारित किये जाएं, कम से कम एक स्त्री संचालक होगी। परन्तु कम्पनी कम से कम एक ऐसा संचालक रखेगी जिसने भारत में पूर्व कैलेंडर वर्ष में कम से कम 182 दिन की अवधि के लिये निवास किया हो। प्रत्येक सूचीबद्ध सार्वजनिक कम्पनी में संचालकों की कुल संख्या के कम से कम एक तिहाई स्वतंत्र संचालक (Independent Director) के रूप में होंगे और केन्द्रीय सरकार अन्य सार्वजनिक कम्पनियों के वर्ग या वर्गों की दशा में स्वतत्र संचालकों की न्यूनतम संख्या निर्धारित कर सकेगी। एक कम्पनी के सम्बन्ध में स्वतंत्र संचालक से आशय प्रबंध-संचालक से भिन्न कम्पनी के एक ऐसे पूर्णकालिक (Whole-

time) संचालक या नामांकिकी (Nominee) संचालक से है जो बोर्ड (मंडल) की राय में सत्यनिष्ठा वाला व्यक्ति है तथा जिसके पास सुसंगत (Relevant) विशेषज्ञता और अनुभव है तथा जो कम्पनी या उसकी सूत्रधारी, सहायक या सहयुक्त कम्पनी का प्रवर्तक (Promoter) नहीं है या नहीं था जो ऐसी कम्पनी में प्रवर्तकों या संचालकों का रिश्तेदार नहीं है और न ही उसका कम्पनी से कोई स्थानीय अर्थात् आर्थिक सम्बन्ध है।

धारा (152) के प्रावधानों के अधीन रहते हुए कोई स्वतंत्र संचालक किसी कम्पनी के बोर्ड में पांच अनुवर्ती (Consecutive) वर्षों की अवधि के लिये पद धारण करेगा। किन्तु आपवादिक मामलों में कम्पनी द्वारा और बोर्ड की रिपोर्ट में ऐसी नियुक्ति के प्रकटन (Disclosure) द्वारा विशेष प्रस्ताव पारित करने पर पुनर्नियुक्ति का पात्र होगा। चक्रानुक्रम द्वारा अर्थात् पारी से संचालकों की सेवानिवृत्ति (Retirement of director by rotation) स्वतंत्र संचालकों की नियुक्ति को लागू नहीं होगी।

अधिनियम की धारा 150 स्वतंत्र संचालकों के चयन का तरीका तथा प्रक्रिया और ऐसे संचालकों के डाटा बैंक के रख-रखाव (Maintence) का वर्णन करती है। धारा 151 छोटे अंशधारियों द्वारा निर्वाचित संचालक की नियुक्ति का प्रावधान करती है। एक सूचीबद्ध कम्पनी के पास ऐसे छोटे अंशधारियों द्वारा निर्वाचित एक संचालक इसके बोर्ड में होगा।

इस धारा के प्रयोजन के लिये छोटे अंशधारियों से आशय एक ऐसे अंशधारियों से है जिसके पास बीस हजार रुपये अथवा ऐसी कोई अन्य राशि, जो निर्धारित की जाए, से अधिक के अंश नहीं हैं।

'एक व्यक्ति कम्पनी' की दशा में एक व्यक्ति सदस्य होने के नाते अर्थात् कारण प्रथम संचालक माना जाएगा जब तक कि कम्पनी अधिनियम, 2013 की धारा 152 (1) के प्रावधानों के अनुसार संचालक अथवा संचालकों की नियुक्ति उचित रूप से नहीं कर दी जाती है।

3.1.1 संचालकों की नियुक्ति (Appointment of Directors)

संचालकों की नियुक्ति के संबंध में निम्नलिखित नियम हैं।

1. प्रथम संचालक (First Directors)

प्रथम संचालकों का नाम सामान्यत: कम्पनी के अन्तर्नियमों में लिखा जाता है। यदि ऐसा नहीं किया है तो सीमानियम पर हस्ताक्षर करने वाले व्यक्तियों द्वारा लिखित रूप में संचालकों के नाम सर्वसम्मति या बहुमत के आधार पर दिए जाते हैं। यदि ऐसा भी नहीं किया गया है तो सीमा नियम पर हस्ताक्षर करने वाले व्यक्तियों को ही संचालक मान लिया जाता है और उनका कार्यकाल कम्पनी की प्रथम वार्षिक साधारण सभा तक होगा।

2. कम्पनी द्वारा संचालकों की नियुक्ति

कम्पनी अधिनियम के अनुसार, संचालकों की नियुक्ति कम्पनी की साधारण सभा में की जानी चाहिए। सार्वजनिक कम्पनी तथा उसकी सहायक निजी कम्पनी की दशा में संचालकों की कुल संख्या के 2/3 की नियुक्ति साधारण सभा में ही की जानी चाहिए। ये संचालक बारी-बारी रिटायर होते रहते हैं। इसीलिए इन्हें बारी-बारी से रिटायर होने वाले संचालक (Rotational Directors) कहते हैं। यदि अन्तर्नियमों में कोई विपरीत प्रावधान न दिया हो तो उपरोक्त कम्पनियों के शेष 1/3 संचालक तथा एक निजी कम्पनी जो सार्वजनिक कम्पनी की सहायक नहीं है, के सभी संचालकों को भी साधारण सभा में ही नियुक्त किया जाता है। कम्पनी द्वारा संचालकों की नियुक्ति के सम्बन्ध में निम्नलिखित प्रावधान हैं-

1. एक सार्वजनिक कम्पनी या उसकी निजी कम्पनी की पहली वार्षिक साधारण सभा में (जो प्रथम संचालकों को नियुक्त करने वाली सभा के बाद बुलाई गई हो) तथा उसके बाद की सभी वार्षिक साधारण सभाओं में बारी बारी से रिटायर होने वाले संचालकों की 1/3 संख्या का अपने पद से रिटायर हो जाना चाहिए।

2. बारी-बारी से रिटायर होने वाले संचालक वे व्यक्ति होने चाहिए जिनकी नियुक्ति की सबसे अधिक समय हो गया है। एक ही समय पर नियुक्त व्यक्तियों के रिटायर होने का फैसला आपसी समझौते द्वारा या पर्ची डालकर किया जाता है।

3. उसी सभा में रिटायर किए गए संचालकों या किसी अन्य व्यक्ति को रिक्त स्थानों पर नियुक्त कर दिया जाता है।

4. यदि इस सभा में संचालकों की नियुक्ति न हो सके तो सभा को अगले सप्ताह के लिए स्थगित कर दिया जाता है। यदि फिर भी संचालकों की नियुक्ति का निर्णय न हो सके तो रिटायर हुए संचालकों को ही पुर्ननियुक्त मान लिया जाता है।

3. संचालकों द्वारा संचालकों की नियुक्ति (Appointment of Directors by Directors)

निम्नलिखित विशेष परिस्थितियों में संचालक मण्डल द्वारा ही संचालकों की नियुक्ति कर दी जाती है-

1. अतिरिक्त संचालक के रूप में (As Additional Directors) अतिरिक्त संचालक की नियुक्ति के सम्बन्ध में मुख्य नियम निम्नलिखित हैं:

   (i) अतिरिक्त संचालक का कार्यकाल केवल निकटतम वार्षिक साधारण सभा तक होता है।

   (ii) अतिरिक्त संचालक सहित सभी संचालकों की संख्या अन्तर्नियमों में वर्णित अधिकतम संख्या से अधिक नहीं होनी चाहिए।

   (iii) वार्षिक साधारण सभा में रिटायर होने वाले संचालकों की संख्या निर्धारित करते समय अतिरिक्त संचालकों को सम्मिलित नहीं होनी चाहिए।

   (iv) प्राय: कम्पनियों द्वारा पहले किसी व्यक्ति को अतिरिक्त संचालक बनाकर बाद में नियमित संचालक बना दिया जाता है।

2. आकस्मिक रिक्त स्थान की दशा में -

आकस्मिक रिक्त स्थान के सम्बन्ध में निम्नलिखित नियम हैं।

1. आकस्मिक रिक्तता से अभिप्राय किसी संचालक की मृत्यु अयोग्यता अथवा सदस्यता देने आदि से है।

2. आकस्मिक संचालक का कार्यकाल उस संचालक के बराबर होगा जिसके स्थान पर उसे नियुक्त किया गया है।

3. आकस्मिक बारी के आधार पर संचालक के पद से रिटायर होने पर रिक्त स्थान को आकस्मिक रिक्तता नहीं माना जाता।

3. वैकल्पिक संचालक के रूप में

वैकल्पिक संचालक की नियुक्त उस समय की जाती है जब मूल संचालक कम से कम तीन महीनों के लिए उस राज्य से बाहर रहता है जहां संचालक मण्डल की सभाएं होती हैं। मूल संचालक लौटते ही वैकल्पिक संचालक का कार्यकाल समाप्त हो जाता है।

4. अन्य पक्षों द्वारा संचालकों की नियुक्ति

अन्तर्नियमों में प्रावधान होने पर संचालकों की कुल संख्या के 1/3 की नियुक्ति अन्य पक्षों द्वारा ही की जा सकती है। अन्य पक्षों का अर्थ उन वित्तीय संस्थाओं तथा लेनदारों से है जो कम्पनी को ऋण प्रदान करते हैं। ये अपने हितों की सुरक्षा को ध्यान में रखे हुए अपने प्रतिनिधि के रूप में इस तरह के संचालकों की नियुक्ति कर सकते हैं।

5. अनुपातिक प्रतिनिधि द्वारा नियुक्ति

कम्पनी अधिनियम के अनुसार अल्प मत वाले अंशधारियों के हितों को ध्यान में रखते हुए कम्पनी अपने अधिनियमों में इस तरह के संचालकों की नियुक्ति के लिए प्रावधान बना सकती है।

6. केन्द्र सरकार द्वारा संचालकों की नियुक्ति (Appointment of Directors by the Central Govt.)

कम्पनी अधिनियम के अनुसार कम्पनी लॉ बोर्ड के लिखित आदेश के अनुरूप केन्द्रीय सरकार किसी कम्पनी के संचालक मण्डल में कम्पनी, अंशधारियों, अथवा जनहित की सुरक्षा के लिए संचालकों की संख्या, उचित संख्या नियुक्त कर सकती है। इस प्रकार की गई नियुक्ति का कार्यकाल अधिनियम तीन वर्ष हो सकता है।

3.1.2 संचालकों को हटाना (Removal by Shareholders)-

संचालकों को निम्नलिखित विधियों द्वारा हटाया जा सकता है-

1. अंशधारियों द्वारा हटाया जाना (Removal by Shareholders) :

(i) केन्द्रीय सरकार द्वारा नियुक्त किए गए संचालक को छोड़कर किसी भी अन्य संचालक को समय से पहले ही कम्पनी की साधारण सभा से हटाया जा सकता है।

(ii) ऐसा उस स्थिति में नहीं किया जा सकता जबकि 2/3 संचालक आनुपातिक प्रतिनिधत्व सिद्धांत के आधार पर नियुक्त किए गए हों।

(iii) किसी संचालक को हटाए जाने के सम्बन्ध में प्रस्ताव पेश किए जाने की सूचना कम्पनी को संम्बन्धित पक्षकार से सभा के 14 दिन पूर्व मिल जानी चाहिए।

(iv) यह सूचना विशेष सूचना होती है।

(v) सूचना प्राप्त होते ही कम्पनी को अपने सभी सदस्यों को इस बात की जानकारी दे देनी चाहिए।

(vi) इस प्रस्ताव की प्रतिलिपि सम्बन्धित संचालक को भी भेज देनी चाहिए।

(vii) सभा में संचालक को अपना पक्ष रखने का अधिकार होता है।

(viii) संचालक प्रस्ताव पेश किए जाने के विरोध में लिखित प्रतिवेदन दे सकता है।

(ix) यदि प्रतिवेदन की प्रतिलिपि कम्पनी को ठीक समय पर प्राप्त हो जाए तो इसकी एक-एक प्रतिलिपि सभी सदस्यों को भेज दी जानी चाहिए।

(x) यदि प्रतिवेदन की प्रतिलिपि सदस्यों के पास नहीं भेजी जा सके तो सम्बन्धित प्रतिवेदन को सभा में पढ़कर सुनाए जाने की मांग कर सकता है।

(xi) रिक्त स्थान को इसी भाग में भरा जाएगा। यदि ऐसा न हो सके तो इसे आकस्मिक रिक्तता की भांति भरा जा सकता है लेकिन हटाए जाने वाले संचालक को पुन: नियुक्त नहीं किया जाएगा।

2. केन्द्र सरकार द्वारा हटाया जाना (Removal by Central Government)

केन्द्र सरकार द्वारा संचालकों को हटाए जाने के सम्बन्ध में निम्नलिखित नियम हैं-

(i) केन्द्र सरकार कम्पनी लॉ बोर्ड के कहने पर किसी भी संचालक को पद से हटा सकती है।

(ii) केन्द्र सरकार कम्पनी लॉ बोर्ड को मामले की जांच के लिए प्रार्थना कर सकती है।

(iii) केन्द्रीय सरकार ऐसा तभी कर सकती है यदि उसे आभास हो कि कोई संचालक अपने दायित्व को निभाने में लापरवाही करता है।

(iv) कम्पनी लॉ बोर्ड स्वयं या केन्द्रीय सरकार के आवेदन पर इस आशय का अंतरिम आदेश (Interim Order) दे सकता है कि उसके द्वारा कोई अन्य आदेश दिए जाने तक सम्बन्धित संचालक अपने पद पर कोई कार्य नहीं करेगा।

(v) कम्पनी लॉ बोर्ड की जांच करने पर यदि मामले का निर्णय प्रतिवादी के विरोध में आ जाता है तो केन्द्र सरकार उसे पद से हट जाने का आदेश देती है।

(vi) ऐसा आदेश के अगले पांच वर्षों तक वह कम्पनी के संचालकों के पद या अन्य किसी पद पर कार्य नहीं कर सकता।

3. राष्ट्रीय कम्पनी लॉ ट्रिब्यूनल द्वारा हटाया जाना (Removal by National Company law Tribunal)

राष्ट्रीय कम्पनी लॉ ट्रिब्यूनल द्वारा संचालकों को हटाए जाने सम्बन्धी निम्नलिखत नियम हैं-

(i) यदि किसी संचालक के विरूद्ध अत्याचार का मामला अथवा कुप्रबंध का मामला प्रस्तुत किया जाता है तो राष्ट्रीय कम्पनी लॉ ट्रिब्यूनल कम्पनी व संचालक के मध्य अनुबंध को रद्द करके उसे पद से हटा सकता है या शर्तों में परिवर्तन कर सकता है।

(ii) इस प्रकार पद से हटने वाला संचालक हर्जाने के लिए कम्पनी पर दावा नहीं कर सकता।

(iii) राष्ट्रीय कम्पनी लॉ ट्रिब्यूनल की पूर्व अनुमति के बिना उसे 5 वर्ष तक पुन: नियुक्त नहीं किया जा सकता है।

3.1.3 संचालकों की वैधानिक स्थिति

संचालकों की परिभाषा में संचालकों की स्थिति पर तो अधिक जोर दिया गया है मगर कम्पनी अधिनियम में इसकी स्थिति को न तो स्पष्ट किया गया है और न ही परिभाषित किया गया है। कम्पनी के संचालकों की वास्तविक वैधानिक स्थिति का यथार्थ चित्रण करना अत्यन्त कठिन है, क्योंकि संचालकों को कभी एजेन्ट, कभी न्यासी, कभी-कभी प्रबन्ध संचालकों के नाम से जाना जाता है। अत: संचालकों की स्थिति का गहन अध्ययन निम्न रूपों में किया गया है-

1. **संचालक की स्थिति प्रतिनिधि के रूप में :** कम्पनी एक कृत्रिम व्यक्ति होने के कारण अपने व्यवसाय की स्वयं देखभाल नहीं कर सकती, इसलिए कम्पनी के प्रबन्ध का कार्य किसी मानवीय प्रतिनिधि को सौंपा जाता है जिसे संचालक कहते हैं। संचालक अंशधारियों द्वारा चुना हुआ प्रतिनिधि होता है, अत: वह कम्पनी का व्यवसाय अंशधारियों के लिए चलाता है। इसलिए उसे कम्पनी का प्रतिनिधि कहा जा सकता है।

2. **संचालक अधिकारियों के रूप में :** संचालक को कम्पनी अधिनियम के अन्तर्गत कुछ विशेष मामलों के लिए अधिकारी माना जाता है, अतएव यदि कम्पनी अधिनियम के प्रावधानों का पालन नहीं करती, तो संचालकों को दण्डित किया जा सकता है।

3. **संचालक कर्मचारियों की तरह :** संचालक कम्पनी के एजेण्ट अवश्य होते हैं, किन्तु वे कम्पनी अधिनियम के अन्तर्गत कर्मचारियों को दिए जाने वाले लाभों तथा विशेषाधिकारी के हकदार नहीं होते। संचालकों को कम्पनी का कर्मचारी नहीं कहना चाहिए। वे तो प्रतिवर्ष अंशधारियों द्वारा नियुक्त किये जाते हैं। प्रबन्ध संचालन में उन्हें स्वतन्त्रता होती है। इस प्रकार संचालकों को कम्पनी के कर्मचारियों के रूप में नहीं माना जा सकता।

4. **संचालक, प्रबन्ध करने वाले साझेदारी की तरह :** संचालक अंशधारियों के प्रतिनिधि के रूप में चुने जाते हैं। इस प्रकार वे प्रबन्धक साझेदारी की स्थिति में होते हैं। संचालक अंश आवंटित करने, माँग करने और अंश हरण करने का कार्य भी करते हैं जो उनके प्रबन्धक साझेदार होने का प्रमाण है। परन्तु किसी संचालक को एक फर्म के साझेदारों की भाँति अन्य संचालकों अथवा अंशधारियों का बाध्य करने का अधिकार नहीं होता।

संचालक की स्थिति ट्रस्टियों की तरहः

वैधानिक दृष्टि में संचालक ट्रस्टी नहीं होते, क्योंकि प्रन्यासी (trustees) अधिनियम के अनुसार ट्रस्टी वह व्यक्ति है जिसे स्वामित्व का हस्तान्तरण हो जाता है। परन्तु संचालक तो कम्पनी के वैधानिक कर्मचारी होते हैं, अत: ये ट्रस्टी नहीं हो सकते। संचालक कम्पनी के धन के लिए प्रन्यासी है न कि ऋणों के सम्बन्ध में। संचालक कम्पनी के अधिकारियों के लिए भी प्रन्यासी है।

3.1.4 संचालक की अंश योग्यताएँ

कम्पनी अपने अन्तर्नियमों में संचालक बनने के लिए कुछ योग्यता अंशों की व्यवस्था करती है जो निम्न प्रकार से हैं-

(i) योग्यता अंशों का कुल मूल्य 5,000 रु. से अधिक नहीं होना चाहिए।

(ii) योग्यता अंशों की गणना में अंश-अधिपत्र पर आधारित धारित अंशों को शामिल नहीं किया जाएगा।

(iii) भेंट से प्राप्त अंशों को योग्यता अंशों में शामिल नहीं किया जाएगा।

(iv) नियुक्त संचालक को अपनी नियुक्ति के दो माह के अन्दर योग्यता अंश खरीदने होंगे।

(v) यदि संचालक 2 माह के अन्दर योग्यता अंश नहीं लेते या अपने कार्यकाल के अन्दर इन अंशों के बिना किसी भी समय संचालक बने रहते हैं तो उनका पद रिक्त माना जाएगा तथा ऐसी त्रुटि होने पर 500 रु. प्रतिदिन की दर से दण्डित किया जा सकता है।

3.1.5 संचालक की अयोग्यताएँ :

धारा 164 में व्यक्त किया गया है कि निम्न व्यक्ति को कम्पनी में संचालक के रूप में नियुक्ति के लिए योग्य नहीं माना जाएगा-

1. अस्वस्थ दिमाग का व्यक्ति।

2. अमुक्त दिवालिया।

3. दिवालिया घोषित किए जाने के लिए आवेदन दे रखा हो।
4. नैतिक अपराध के अभियोग में कम से कम 6 माह की सजा दी गई हो और सजा को समाप्त हुए अभी 5 वर्ष समाप्त न हुए हों।
5. अंशों पर माँगी हुई याचना राशि का भुगतान न होने पर।
6. न्यायालय द्वारा कम्पनी के प्रवर्तन, निर्माण अथवा उसके प्रबन्ध के सम्बन्ध में कपटपूर्ण कार्य करने के कारण अयोग्य घोषित कर दिया गया हो।

3.1.6 संचालक कौन हो सकता है?

निम्न योग्यता रखने वाला व्यक्ति कम्पनी में संचालक नियुक्त किया जा सकता है-

1. **अनुबन्ध क्षमता :** ऐसा व्यक्ति जो भारतीय अनुबन्ध अधिनियम, 1872 के अनुसार अनुबंध करने की क्षमता रखता हो।
2. **योग्यता अंश :** कम्पनी अन्तर्नियमों के अनुसार निर्धारित योग्यता अंश धारित किए हुए हों।
3. **अवैध घोषित न हो :** संचालक बनने के लिए उसे अवैध घोषित न किया गया हो।
4. **केवल व्यक्ति :** संचालक केवल एक व्यक्ति ही हो सकता है, धर्म या समामेलित संस्था नहीं।
5. **लिखित सहमति :** संचालक के रूप में कार्य करने के लिए लिखित सहमति प्रदान की होनी चाहिए।

3.1.7 संचालकों का पारिश्रमिक :

कम्पनी अधिनियम, 2013 ने संचालकों के पारिश्रमिक के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण बदलाव किये हैं जो निम्नलिखित हैं-

1. संचालकों को किसी परिश्रामिक का भुगतान तब तक नहीं किया जा सकता जब तक कि इस सम्बन्ध में कम्पनी के पार्षद अन्तर्नियम में कोई प्रावधान न हो अथवा इसके भुगतान की अनुमति कम्पनी की व्यापक सभा में न दे दी गई हो। यदि परिश्रामिक का भुगतान अन्तर्नियमों अथवा व्यापक सभा के अधिकृत किये बिना कर दिया जाता है तो इसे वापिस मांगा जा सकता है तथा कम्पनी के समापन की दशा में समापक अर्थात् निस्तारक (Liquidator) इसे संचालकों से फिर से प्राप्त कर सकता है।
2. कम्पनी अधिनियम, 2013 की धारा 197 के अन्तर्गत यह प्रावधान है कि किसी कम्पनी के संचालकों को जिसके अन्तर्गत कोई प्रबन्ध संचालक तथा पूर्णकालिक संचालक भी है, का देय परिश्रामिक का निर्धारण या तो कम्पनी के अन्तर्नियमों द्वारा या किसी प्रस्ताव द्वारा और यदि अन्तर्नियमों में ऐसा अपेक्षित हो तो व्यापक सभा में कम्पनी द्वारा पारित किसी विशेष प्रस्ताव द्वारा किया जाएगा। पारिश्रमिक की राशि अथवा भुगतान की विधि अधिनियम की धारा 198 के प्रावधान के अनुसार होगी।
3. यह धारा एक सार्वजनिक कम्पनी अथवा उसकी सहायक कम्पनी द्वारा देय कुल अधिकतम पारिश्रमिक बतलाती है। इस धारा के अनुसार संचालकों या प्रबन्धकों को देय कुल प्रबंधकीय पारिश्रमिक उस वित्तीय वर्ष के लिए उस कम्पनी की धारा 198 में वर्णित रीति से गणना करके उन शुद्ध लाभों के 11% से अधिक नहीं होगा। यह प्रतिशत किसी बैठक फीस अर्थात् संचालक मण्डल की बैठक (सभा) में शामिल होने की फीस को छोड़कर होगा।

3.2 संचालक मण्डल के अधिकार (Powers of Board of Directors)

धारा 179 के अनुसार संचालक मण्डल कम्पनी अधिनियम, सीमानियम तथा अन्तर्नियमों के प्रावधान के अधीन ही अपने अधिकारों का प्रयोग कर सकता है। अर्थात संचालक मण्डल वे सभी कार्य कर सकता है जिनके लिए स्वयं कम्पनी अधिकृत है लेकिन वे कार्य नहीं किए जा सकते जिनको केवल साधारण सभा में ही किया जा सकता है। संचालक मण्डल की सभाओं में प्रस्ताव पास करके निम्नलिखित अधिकारों का प्रयोग किया जा सकता है-

(i) किसी संचालक का पद आकस्मिक रूप से रिक्त होने की स्थिति में रिक्त स्थान की पूर्ति करना।

(ii) अंशों पर याचना राशि मांगने का अधिकार।

(iii) ऋणपत्रों के निर्गमन का अधिकार।

(iv) अन्य साधनों से ऋण लेने का अधिकार।

(v) उपलब्ध साधनों से विनियोग का अधिकार।

(vi) कम्पनी की ओर से ऋण देने का अधिकार।

(vii) राजनीतिक उद्देश्य से चंदा देने का अधिकार।

(viii) कम्पनी के साथ किए गए किसी अनुबंध में कम्पनी के संचालक/संचालकों के हित के प्रकटीकरण की सूचना प्राप्त करने का अधिकार।

(ix) किसी अन्य समामेलित संस्था के अंश खरीदने का अधिकार।

(x) संचालकों द्वारा लिए गए अंशों की सूचना प्राप्त करने का अधिकार।

3.3 संचालक के कर्त्तव्य (Duties of Directors)

संचालकों के कर्त्तव्य कम्पनी के अन्तर्नियमों द्वारा नियमित होते हैं। इनके कर्त्तव्यों को निम्नलिखित भागों में विभक्त किया जा सकता है।

1. **न्यायसवत् कर्त्तव्य (Fiduciary Duties) :** जैसा कि स्पष्ट है कम्पनी स्वयं कुछ नहीं कर सकती। कम्पनी का व्यवहार चलाने वाले व्यक्ति संचालक ही होते हैं। अत: संचालकों से यह अपेक्षा रहती है कि वह जो भी कार्य करेंगे वह पूरी सत्यनिष्ठा से तथा कम्पनी व अंशधारियों के हित में करेंगे। संचालक के पद पर रहते हुए कोई गुप्त लाभ नहीं कमाएंगे।

2. **सावधानी, दक्षता एवं मेहनत से कार्य करने का कर्त्तव्य (Duties of Care, Skill and Diligence):** संचालकों का दूसरा महत्वपूर्ण कर्त्तव्य यह है कि वे जो भी कार्य करें उसे पूरी सावधानी से, दक्षता से तथा मेहनत से करें। उन्हें सभी कार्य इस भांति करने चाहिए जैसे एक सामान्य बुद्धि का व्यक्ति स्वयं अपने लिए करता है।

3. **प्रकटीकरण का कर्त्तव्य (Duties of Disclosure) :** यह संचालकों का न्यासवत् कर्त्तव्य ही है। इसका अर्थ है यदि कम्पनी के साथ कोई ऐसा अनुबंध किया जाता है जिसमें किसी संचालक का हित है तो यह बात स्पष्ट कर देनी चाहिए। संचालक मण्डल की जिस सभा में उपरोक्त अनुबंध पर विचार होगा उस सभा में हित रखने वाला संचालक भाग नहीं होगा अथवा उसमें मतदान नहीं करेगा।

3.4 संचालकों का दायित्व (Liabilities of Directors)

संचालकों के दायित्वों का अध्ययन निम्नलिखित भागों में किया जा सकता है:

1. **कम्पनी के प्रति (Liabilities to the Company) :** यदि संचालक अपने अधिकारों के अन्तर्गत कार्य करते हैं तथा कर्त्तव्य पालन में अपनी बुद्धि एवं अनुभव के अनुसार उचित सावधानी बरतते हैं तथा वे कम्पनी के लाभ के लिए पूरी ईमानदारी से कार्य करते हैं, ऐसी स्थिति में यदि किसी निर्णय लेने में कोई भूल हो जाती है तो उन्हें उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता। इसके विपरीत कर्त्तव्य पालन में जानबूझ कर की गई लापरवाही के लिए उन्हें उत्तरदायी ठहराया जा सकता है।

   किसी संचालक पर लापरवाही के लिए दावा करने के लिए आवश्यक है कि कम्पनी को कुछ हानि हुई हो। ऐसी हानि जो लापरवाही के कारण न हुई हो अथवा ऐसी लापरवाही जिससे कोई हानि न हुई हो को किसी दावे का आधार नहीं बनाया जा सकता।

2. **अन्य पक्षों के प्रति दायित्व (Liabilities Parties) :** अन्य पक्षों के प्रति निम्नलिखित दायित्व हो सकते हैं-
   (i) आबंटन अनियमित होने पर दायित्व।
   (ii) प्रविवरण में मिथ्या कथन होने पर दायित्व।
   (iii) संचालक कम्पनी के एजेन्ट की भांति कार्य करते हैं। अत: जिन कार्यों के लिए एजेन्ट दायी होता है, उनके लिए संचालक भी दायी होते हैं।
   (iv) यदि किसी अनुबंध पर संचालक का नाम लिखे बिना ही अपने हस्ताक्षर कर देते हैं तो वे स्वयं दायी होते हैं।

3. **वैधानिक कर्त्तव्यों का पालन न करने पर दायित्व (Liabilities for Breach of Statutory Duties):** यदि संचालक निर्धारित ढ़ंग से कम्पनी का हिसाब-किताब नहीं रखते, विवरण फाईल नहीं करते तथा अन्य वैधानिक औपचारिकताओं को पूरा नहीं करते तो उन्हें वैधानिक कर्त्तव्यों का पालन न करने पर दण्डित किया जा सकता है।

3.5 प्रबंध संचालक (Managing Director)

वह व्यक्ति जिस पर प्रबंधकीय कार्यों का अधिकतम भार होता है प्रबंध संचालक कहलाता है। धारा 2(54) के अनुसार, प्रबंध संचालक उस संचालक को कहते हैं जिसे किसी कम्पनी के प्रबंध का काम पूरी तरह से सौंपा गया है। साधारणतया प्रबन्ध संचालक की नियुक्ति की शक्ति (अधिकार) कम्पनी के अन्तर्नियमों में इस सम्बन्ध में प्रावधान करके कम्पनी के संचालक-मण्डल को प्रदान की जाती है। बोर्ड (संचालक-मण्डल) संचालकों में से किसी एक को प्रबंध संचालक नियुक्त कर देता है तथा अंशधारियों की व्यापक सभा इस नियुक्ति में हस्तक्षेप नहीं कर सकती है।

यदि किसी पूर्णकालिक मुख्य प्रबंधकीय कार्मिक का पद रिक्त हो जाता है तो परिणामिक रिक्त (Resuting Vacancy) बोर्ड द्वारा ऐसी रिक्ति की तारीख से छह मास की अवधि के भीतर बोर्ड की बैठक में भरी जाएगी।

यदि कोई कम्पनी प्रबंध संचालक की नियुक्ति के सम्बन्ध में धारा 203 के प्रावधानों का उल्लंघन करेगी। तो ऐसी कम्पनी ऐसे जुर्माने से दंडित होगी जो एक लाख रुपये से कम नहीं होगा। किन्तु जो पांच लाख रुपये तक हो सकता तथा प्रत्येक संचालक तथा मुख्य प्रबंधकीय कार्मिक, जो त्रुटि करता

है ऐसे जुर्माने से, जो पचास हजार रुपये तक का हो सकेगा, दंडनीय होगा और जहाँ ऐसी त्रुटि जारी रहती है वहां प्रत्येक दिन के लिए, जिसके दौरान त्रुटि जारी रहती है, अतिरिक्त जुर्माने से, जो एक हजार रुपये तक हो सकेगा, दंडनीय होगा।

यदि प्रबंध संचालक की नियुक्ति अधिनियम की धारा 203 के प्रावधानों के उल्लंघन में पाई जाती है, तो ऐसी नियुक्ति समाप्त हो जाएगी तथा नियुक्त हुए व्यक्ति को उस अवधि में प्राप्त सभी वेतन, कमीशन तथा परिलाभों को, जो उसने प्रबंध संचालक के रूप में कार्य करने की अवधि के दौरान लिये थे, कम्पनी को वापिस करने होंगे। इसके अतिरिक्त वह एक लाख रुपये के जुर्माने से दंडनीय होगा। प्रबंध संचालक, जिसकी नियुक्ति अधिनियम के प्रावधानों के उल्लंघन में हुई है, के द्वारा किये गए सभी कार्य वैध होंगे यदि वे अन्यथा वैध है। (धारा - 203)

3.5.1 प्रबंध संचालक के पद के लिए अयोग्यताएं (Disqualifications of Managing Director)

यदि किसी व्यक्ति का निम्नलिखित में से किसी पद के साथ सम्बन्ध रहा हो तो यह प्रबन्ध संचालक के पद पर नियुक्त नहीं किया जा सकता।

(i) किसी भी समय दिवालिया घोषित किया गया हो या उन्मुक्त दिवालिया होना अथवा

(ii) अपनी देनदारियों को स्थगित करता है, या उसने कभी ऐसा किया हो, उसने कभी कोई भुगतान निपटारे द्वारा किया है, अथवा

(iii) किसी नैतिक अपराध के मामले में दण्डित किया गया हो।

कम्पनी में केवल एक ही प्रबन्ध-संचालक अथवा पूर्ण-कालिक संचालक होने पर शुद्ध लाभ का 5% तथा एक से अधिक होने पर अधिकतम 10% तथा कमीशन परिश्रामिक रूप में दिया जा सकता है। कुल मिलाकर प्रबंधकीय परिश्रामिक शुद्ध लाभ के 11% से अधिक नहीं होना चाहिए।

निष्कर्ष (Summary) :

अन्त में हम कह सकते हैं कि वास्तव में संचालक मण्डल कम्पनी के प्रबन्ध एवं प्रशासन के सम्बन्ध में सर्वोच्च अधिकारी है। यह मण्डल प्रबन्ध संचालक, प्रबन्धक तथा सचिव की नियुक्ति करता है। अब जबकि प्रबन्ध अभिकर्त्ता प्रणाली का उन्मूलन कर दिया गया है, संचालकों की आवश्यकता व महत्व और अधिक बढ़ गया है।

5. प्रस्तावित पुस्तकें (Suggested Readings) :

1.	Company Law and Secretarial Practice	- S.M. Shukla	Sahitya Bhawan Pub.
2	Company Law and Secretarial Practice	- D. P. Jain	Dhanpat Rai & Co. (P) Ltd.
3.	Company Law	- N. D. Kapoor	Sultan Chand and Sons
4.	Company Law and Auditing	- S. C. Aggarwal	R. Chand & Company

6. नमूने के लिए प्रश्न (Sample Questions) :

1. एक कम्पनी में संचालकों की वैधानिक स्थिति क्या है? क्या संचालक अपने कार्यों के लिए तीसरे पक्षकारों के प्रति दायी है?

   What is the legal position of directors in a Company? Are they avilable for their Acts to third parties?

2. एक कम्पनी के संचालकों की नियुक्ति के विभिन्न तरीकों का वर्णन कीजिए।

   (Discuss the Various ways in which the directors of a Company may be appointed)

3. कम्पनी संचालक के अधिकारों तथा कर्त्तव्यों का विवेचन कीजिए।

   (Discuss the Rights or Powers and duties of a Company director)

4. संचालकों की नियुक्ति किस प्रकार की जाती है। उनके क्या अधिकार हैं।

   (How are directors appointed? What are their powers?)

5. भारतीय कम्पनी अधिनियम में संचालकों के पारिश्रमिक तथा पद से हटाए जाने के सम्बन्ध में क्या व्यवस्थाएँ हैं।

   (What are the provisions under the Indian Companies Act relating to the Remuneration and Removal of directors?)